विशेषांक

राष्ट्रीय छात्रशक्ति

वर्ष ३१ अंक ७ जुलाई २०१० नई दिल्ली मूल्य ५ रु. पृष्ठ ६०

छात्र आन्दोलन की प्रासंगिकता

With Best Compliments from

Brahampuri Steels Limited

H.O. & Unit -I : A-301(D), Road No 15, Vishwakarma Industrial Area, Jaipur
Unit-II : 172 (F), Industrila Area, Jhotwara, Jaipur
Phones: 0141-2341773, 2460073, 2460087 Fax : 0141-2313006
E-mail : brahampuristeels@yahoo.co.in

Manufacturers of :

*M.S. Re Rolled Products such as Angle, Channel, Flat, Rounds, Squares, Sections
*Hot Dip Galvanized M.S. Structures such as Transmission Towers, Telecom Towers, Sub Station Structurers etc.

With Best Compliments from

Shree Krishna Rolling Mills (Jaipur) Ltd.

37, Ind. Area, Jhotwara, Jaipur - 302012
Ph. : (O) 2341051-53, 2341996, 2340305
Fax : 0141-2341052 E-mail : skrml@dil.in

Manufacturers of :

TMT Bars, Rounds, Transmission Line Tower Angles, Joists, Channels, Sections and Special Profiles etc.

IS : 1786

SKRM

कृष्णा TMT सरिया

विश्वास फौलाद सा !

राष्ट्रीय छात्रशक्ति

शिक्षा क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

विशेषांक

छात्र आन्दोलन की प्रासंगिकता

सम्पादक
आशुतोष

●

अतिथि सम्पादक
डॉ. राजनारायण शुक्ल

सम्पादक मण्डल
संजीव कुमार सिन्हा
आशीष कुमार 'अंशु'
उमाशंकर मिश्र

●

सम्पादकीय कार्यालय
690/1, गली नं.-21, जोशी रोड
करोल बाग, नई दिल्ली
फोन : 011-43098248
E-mail : chhatrashakti@yahoo.in Website : www.abvp.org

●

पृष्ठ सज्जा
के.जी. कम्प्यूटर्स
ई-मेल : **kg.computers@yahoo.com**

मुद्रक और प्रकाशक राजकुमार शर्मा द्वारा अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् के लिए बी-50, विद्यार्थी सदन, क्रिश्चियन कॉलोनी, दिल्ली-110007 से प्रकाशित एवं मॉडर्न प्रिन्टर्स, के.30, नवीन शाहदरा, दिल्ली. 32 द्वारा मुद्रित

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	लेखक	पृ.सं.
	सम्पादकीय		5
1.	छात्र आन्दोलन की प्रासंगिकता	• आशुतोष	7
2.	छात्र आन्दोलन और छात्र निर्माण	• मदनदास	11
3.	सतत् विद्यमान है छात्रों की आन्दोलनपरता	• राजकुमार भाटिया	13
4.	व्यवस्था की जड़ता को तोड़ता है छात्र आन्दोलन	• डा. महेशचन्द्र शर्मा	14
5.	विद्यार्थी परिषद् : छात्र आन्दोलन का पर्याय	• डॉ. कैलाश शर्मा	16
6.	समाज परिवर्तन छात्र आन्दोलन की पहचान	• अतुल कोठारी	18
7.	विद्यार्थी आन्दोलन में छात्रा सहभाग	• गीता ताई गुंडे	20
8.	छात्रों के लोकतांत्रिक अधिकारों की रक्षा हो...	• सुनील आंबेकर	22
9.	छात्रों के सामने आदर्श प्रस्तुत करने की जरूरत	• सुनील बंसल	25
10.	छात्र आन्दोलन और उसकी प्रासंगिकता	• डा. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री	27
11.	राजनीति से नहीं, राजनैतिक दलों से सावधान रहें छात्र	• जवाहरलाल कौल	31
12.	आंदोलन अर्थात् एक उद्देश्य, एक नारा, एक नेतृत्व	• आलोक कुमार	33
13.	खामोश परिसरों को जिंदा करने की जरूरत	• संजय द्विवेदी	34
14.	छात्र आन्दोलन का व्यापक विस्फोट जरूरी	• राजनारायण शुक्ल	38
15.	क्या मिल पाएगी छात्र राजनीति को नई दिशा	• रवि त्रिपाठी	40
16.	लोकतांत्रिक व्यवस्था और छात्र आन्दोलन की प्रासंगिकता	• देवेन्द्र शर्मा	43
17.	आन्दोलन तो युवा छात्र की रगों में दौड़ता है	• रजनीश अग्रवाल	45
18.	जरूरी है नए तेवर, नए रचनात्मक हथियार	• आदित्य झा	47
19.	देश में छात्र असंतोष चरम पर	• संजीव कुमार सिन्हा	49
19.	**Contextualizing Student Movement in National Democratic Culture And Politics**	• **Dr. Shiv Shakti Bakshi**	51
	स्तम्भ : दस्तावेज		54

वैधानिक सूचना: राष्ट्रीय छात्रशक्ति में प्रकाशित लेख एवं विचार तथा रचनाओं में व्यक्त दृष्टिकोण सम्बन्धित लेखकों के है। सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। समस्त प्रकार के विवादों का न्यायिक क्षेत्र दिल्ली होगा।

सम्पादकीय

पिछले कुछ समय से भारतीय छात्र आन्दोलन बुद्धिजीवियों के बीच चर्चा के केन्द्र में है। कालेजों में छात्रसंघ चुनाव होने चाहिए या नहीं इस पर बहस हो रही है। अगर होने चाहिए तो प्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली से अथवा अप्रत्यक्ष रूप से केवल मनोनयन के आधार पर। अर्थात् 'नहीं होने चाहिए' के विकल्प में भी छात्रों को लोकतांत्रिक प्रक्रिया के प्रशिक्षण से दूर रखने का मन्तव्य दिखाई दे रहा है और 'होने चाहिए' के विकल्प में यह साजिश स्पष्ट समझ में आ रही है, जब केवल छात्रों को मनोनीत छात्रसंघ का विकल्प सुझाया जा रहा है। अर्थात् छात्रों को छात्र नेतृत्व से वंचित करने और भ्रष्टाचार, आतंकवाद तथा कुव्यवस्था विरोधी स्वाभाविक छात्रों के तेवरों को ठंडा करके अपने कैरियर का ध्यान दिलाकर शातिर तरीके से देश के प्रति अपनी जिम्मेदारी की भावना से दूर करने का प्रयास हो रहा है। यह साजिश कौन लोग कर रहे हैं? बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के समर्थक कारपोरेट जगत के इशारे पर चलने वाले लोग, सत्ता समर्थक बुद्धिजीवी, ताकि जो भी चल रहा है इसके प्रति लापरवाही बरती जाए और देश की भयानक समस्याओं के प्रति छात्र उदासीन हो जाए। कई बार ऐसा लगता भी है कि ये साजिश सघन हो रही है।

28 जून को 25 वर्ष पुराना भोपाल गैस त्रासदी का फैसला आया। निर्णय सुनकर पूरा देश हिल गया। भोपाल गैस त्रासदी का पूरा दृश्य एक बार सामने आ गया। 15 हजार से ज्यादा मौतें, हजारों घायलों की चीख पुकार, लाखों परिवार बर्बाद हो गए, धुंए की घुटन भोपाल के लोग अभी तक महसूस कर रहे हैं। इन सबके जिम्मेदार एंडरसन के बारे में फैसले में कहीं कोई जिक्र नहीं। और देश के छात्रों से जो तीखी प्रतिक्रिया अपेक्षित थी, नहीं आई।

यह वही देश है जिसने स्वतंत्रता संग्राम का शंखनाद करते हुए स्वदेशी आन्दोलन में अपने प्रिय वस्त्र, प्रसाधन सामग्री, अन्य सामग्री की होली जला दी। यह वही देश है जहां के छात्रों-युवाओं ने गांधीजी के आह्वान पर असहयोग आन्दोलन में कूदकर अपनी पढ़ाई की चिंता न करते हुए ब्रिटिश साम्राज्य की चूलें हिला दीं। यह वही देश है जहां के छात्रों ने 'करो या मरो' के आह्वान पर अपना सर्वस्व निछावर कर देने की बलिदानी भावना से ब्रिटिशों को देश छोड़ कर भागने पर विवश कर दिया। स्वतंत्रता के बाद देश के पुनर्निर्माण की प्रक्रिया में भी छात्र पीछे नहीं रहे। भ्रष्टाचारी चिमनभाई पटेल सरकार को गिरा देने वाले गुजरात के छात्र हों या बिहार छात्र आन्दोलन या फिर आसाम आन्दोलन, छात्र सभी जगह आगे आये। देश में तानाशाही के विरुद्ध उपजा प्रसिद्ध छात्र आन्दोलन (जे.पी. आन्दोलन) हम सभी को अभी तक स्मरण है।

लेकिन शायद ही छात्र आन्दोलन को समाप्त या अप्रासंगिक मान लेने की गलतफहमी अधिक समय तक चल पाए। सन् 2008 में देश की विकराल होती जा रही समस्या

बंगलादेशी घुसपैठ की ओर अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् ने पूरे देश के छात्रों का ध्यान आकृष्ट कराया। इसके प्रबल प्रतिरोध के लिए किशनगंज में छात्रों का रैली के लिए आह्वान किया। चालीस हजार छात्र पूरे देश से किशनगंज पहुंचे। लाठीचार्ज हुआ पर छात्रों ने पूरे आक्रोश के साथ बंगलादेशी घुसपैठ का विरोध किया और देश का ध्यान इस समस्या की तरफ आकर्षित किया। इस घटना से साबित हो जाता है कि छात्र आन्दोलन न सिर्फ जीवित है बल्कि पूरी हुंकार के साथ जीवित है। आवश्यकता है तो कुशल नेतृत्व की जो आई.टी. के युग में और नए परिवेश में विद्यार्थी परिषद् को देना है। विद्यार्थी परिषद इस बात का पूरा श्रेय लेने का भ्रम नहीं पालती परन्तु दुर्योग से सच यह है कि देश के तमाम महाविद्यालयों में अभाविप के अतिरिक्त सभी अन्य छात्र संगठन या तो पूरी तरह लुप्त हो गए हैं या फिर सिमट गए हैं। ऐसे समय में यह कमी विद्यार्थी परिषद को पूरी करनी है।

देश में नक्सलवादी क्रूरता अपने चरम पर है। आतंकवाद के प्रति केन्द्र सरकार का ढुलमुल रवैया समस्या को और अधिक गंभीर कर रहा है। बंगलादेशी घुसपैठ विरोधी आन्दोलन को अभी और आगे बढ़ाना है। भ्रष्टाचार देश के विकास को अवरुद्ध किए हुए है। और शिक्षा क्षेत्र में विदेशी विश्वविद्यालयों का प्रवेश इस देश में पुनः विदेशी साजिशों के केन्द्र स्थापित करने का कार्य करेंगे। इस स्थिति में एक बड़े छात्र आन्दोलन की आवश्यकता सभी राष्ट्रीय विचारकों के ध्यान में आ रही है।

अतएव यह आवश्यक हो जाता है कि वर्तमान परिवेश में छात्र मानसिकता की सही तस्वीर को समझा जाए। छात्र जिस शैक्षिक परिवेश में पढ़ रहे हैं उसे समझा जाए। इस समय देश की जो स्थिति है उसे समझा जाए। और इस सबके साथ छात्रों की ऊर्जा का राष्ट्रीय विकास में क्या योगदान हो सकता है, उसे समझा जाए। छात्र आन्दोलन की सही दिशा तभी निर्धारित हो सकेगी, उसकी प्रासंगिकता के संदर्भ तभी खुल सकेंगे। यही विचार कर छात्रशक्ति के सम्पादक मंडल ने तय किया कि इस विषय पर देश के तमाम छात्र नेताओं, पूर्व छात्र नेताओं, शिक्षाविदों, पत्रकारों, बुद्धिजीवियों के विचारों को समझा जाये और उन्हें लेख के रूप में छात्र समुदाय के सामने रखा जाए। आदरणीय मदनजी, जिनके नेतृत्व में विद्यार्थी परिषद ने कई बड़े और राष्ट्रीय महत्व के आन्दोलन किए, विनम्र आग्रह के बाद उन्होंने भी इसमें अपने विचार देना स्वीकार किया है तथा वर्तमान में विद्यार्थी परिषद के राष्ट्रीय संगठन मंत्री श्री सुनील अम्बेकर जी ने भी अपने विचार इस विशेषांक में व्यक्त किए हैं। छात्र आन्दोलन की प्रासंगिकता के बारे में विभिन्न अधिकारिक विद्वानों की राय क्या है? इसे हम इस विशेषांक से जान सकेंगे और अपनी भूमिका निश्चित करने में हमें इससे सहायता अवश्य मिलेगी।

अस्तु, पत्रिका आपके समक्ष है और 'छात्रशक्ति' परिवार को इसे आपके सामने रखने में अपार आनन्द का अनुभव हो रहा है। विश्वास है कि विद्यार्थी परिषद् की स्थापना (9 जुलाई 1949) के 60 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर प्रकाशित पत्रिका का यह अंक 'छात्र आन्दोलन की प्रासंगिकता' विषय पर एक नयी बहस खड़ी करने में समर्थ होगा।■

छात्र आन्दोलन की प्रासंगिकता

■ आशुतोष

आन्दोलन शब्द किसी हलचल, प्रतिक्रिया, गति अथवा स्पंदन के अर्थ में प्रयोग किया जाता है। जब यह राजनैतिक अथवा सामाजिक संदर्भों में प्रयोग किया जाता है, तो इसका आशय ऐसी सामूहिक गतिविधि से होता है जो किसी विशेष उद्देश्य को सामने रख कर की जाती है।

भारत के इतिहास पर नजर डालें तो मध्यकाल में जब इस्लामी शासकों के अत्याचार चरम पर थे, सामान्य हिन्दू जनमानस में अपने पूर्वजों का स्वाभिमान, अपने संस्कारों की चेतना और व्यक्तिगत संतापों का सामना करने के लिए संबल के रूप में भक्ति आन्दोलन का विधान तत्कालीन संतों ने किया।

भक्ति का यह आन्दोलन किसी के विरुद्ध नहीं था। मनुष्य अपने-आप को विपरीत परिस्थितियों में भी असहाय अनुभव न करे और धर्म का आचरण करते हुए लोककल्याण की साधना का मनोभाव बनाये रखे इसलिए आन्दोलन का सृजन हुआ था। अपनी रुचि और स्वभाव के अनुकूल ईश्वर के जिस भी रूप में व्यक्ति की आस्था हो, उसका स्मरण और आत्मसंयम का अभ्यास ही इस आन्दोलन के प्रकट लक्षण थे।

यद्यपि इसी कालखंड में अनेकानेक समूहों ने अपनी स्वतंत्रता की प्राप्ति और आस्था के पालन के लिए विभिन्न मार्गों से यथाशक्ति प्रतिरोध भी किया। यह प्रतिरोध भी एक प्रकार का आंदोलन ही था। आंदोलनों की यह शृंखला बाद में भी जारी रही। 1857 में क्रांति की तैयारियों के दौरान गोपनीय रूप से कमल और रोटी का देशभर में प्रसार आंदोलन नहीं तो और क्या था? गांधी के जन्म से भी पहले रानाडे द्वारा चलाया गया स्वदेशी आन्दोलन और बंग-भंग विरोधी आन्दोलन भी मील के पत्थर हैं।

राजनैतिक क्षितिज पर महात्मा गांधी के उदय के साथ ही आन्दोलन को नयी परिभाषा मिली। अहिंसा और अवज्ञा के साथ जोड़कर आन्दोलन का एक नया रूप गढ़ा गया जो मूल चरित्र में नकारात्मक था। प्रथम, यह अंग्रेजों के विरुद्ध था अर्थात् इसका अस्तित्व ही विरोध पर आधारित था। द्वितीय, यह हम यह चाहते हैं अथवा हम यह करेंगे के स्थान पर हम यह नहीं करेंगे पर बल देता था। कालान्तर में आन्दोलन का यही स्वरूप रूढ़ हो गया। स्वतंत्रता पूर्व के तीन दशक और स्वतंत्रता से आज तक भी इस रूढ़ता के चलते आंदोलन की बात ही नकारात्मक मानी जाने लगी। जुलूस, धरना, प्रदर्शन, पुतले जलाना, हड़तालें कराना, कक्षाओं और कार्यालयों का बहिष्कार, कभी-कभी सार्वजनिक सम्पत्ति को नुकसान पहुंचाना और तोड़-फोड़ तथा छोटी-मोटी हिंसा आन्दोलन का पर्याय बन गये।

स्वतंत्रता मिलने के पश्चात् गांधी के वारिस जहां सत्ताधीश बन गये वहीं समाजवादी विचार के लोगों ने आंदोलन का रास्ता पकड़ लिया। '50, '60 और '70 के दशक भारत में आन्दोलन के दशक थे। हर समस्या का हल आंदोलन में खोजा जाने लगा। इन आन्दोलनों से पहचान पाने वाले अनेक लोग लोकतांत्रिक प्रक्रिया में शामिल हो विधानसभाओं तथा संसद में निर्वाचित हुए, देश के सर्वोच्च पदों पर पहुंचे। किन्तु उन पदों पर पहुंचने के बाद वे अपनी धार कायम नहीं रख सके और जनता के बीच अपनी विश्वसनीयता खो बैठे।

आन्दोलन की नकारात्मक शैली और विश्वास के संकट ने बाद की पीढ़ी को इससे दूर कर दिया।

भारत में छात्र आन्दोलन-रचनात्मक दिशा

सुदीर्घ इतिहास में समाज की विशिष्ट जीवनशैली और शिक्षण की गुरुकुल पद्धति के कारण भारत में छात्रों को सामाजिक अन्याय अथवा राजनैतिक व्यवस्था के परिवर्तन के लिए संघर्ष करने का अवसर ही नहीं था। किन्तु तत्कालीन समाज का नेतृत्व करने वाला वर्ग भी युवाओं की ऊर्जा से ही नहीं अपितु उसे परिवर्तनकामी और हर चुनौती के सामने साहस के साथ खड़े होने की क्षमता से भी परिचित था। साथ ही वह इस ऊर्जा को लोककल्याण के लिए नियोजित करने की सिद्धता भी रखता था।

विश्वामित्र द्वारा किशोरावस्था में राम और लक्ष्मण को अपने साथ ले जाना, आसुरी शक्तियों के विनाश के लिए उनका शारीरिक व मानसिक प्रशिक्षण तथा अंततः उनके हाथों राक्षसों के वध की कथा से सभी परिचित हैं। चाणक्य

ने भी चन्द्रगुप्त के नेतृत्व में छात्रों की पूरी सेना का ही निर्माण किया। जब मगध जैसा राज्य विदेशी आक्रान्ता से टकराने के लिए प्रस्तुत नहीं था, चाणक्य के मार्गदर्शन में तक्षशिला और मगध के छात्रों ने मिलकर वह लड़ाई लड़ी और जीती।

उपरोक्त उदाहरण बताते हैं कि ईसा के सैकड़ों वर्ष पहले भी भारतीय समाज अपनी राष्ट्रीय पहचान निश्चित कर चुका था और उसकी रक्षा के लिए सन्नद्ध था। साथ ही देश की रक्षा और देश की प्रगति में छात्रों की भूमिका को स्वीकार करता था और उसे वह भूमिका सौंपता भी था। देश के छात्रों पर यही विश्वास 1974 में जयप्रकाश नारायण ने व्यक्त किया था और छात्रों के बल पर उनके नेतृत्व में ऐतिहासिक अहिंसक आन्दोलन चला और लोकतंत्र की बहाली का चमत्कार घटित हुआ।

भारतीय राजनीति के एक अन्य पुरोधा स्व. नानाजी देशमुख इस बात को एक उदाहरण के माध्यम से समझाते थे। वे कहते थे-हमें किसी एक गांव तक पहुंचना है। अपनी मंजिल तक पहुंचने के लिए हम चले तो मार्ग में एक नदी ने रास्ता रोक लिया। नदी को पार करने के लिए नाव का प्रयोग आवश्यक है, इसलिए किया। दूसरे तट पर पहुंच कर नाव वहीं छूट जाती है। फिर से अपनी यात्रा प्रारंभ हो जाती है। नाव केवल नदी पार करने का माध्यम है, मंजिल नहीं। यही स्थिति अपने देश की है। स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए हड़तालें, बहिष्कार, अवज्ञा तथा किसी सीमा तक हिंसा का भी उपयोग आवश्यक था, इसलिए किया। आज चुनौती अपने देश को आगे बढ़ाने की है, अशिक्षा दूर करने की है, हर हाथ को काम और हर खेत तक पानी पहुंचाने की है। इसके लिए स्वाधीनता संघर्ष वाले नुस्खों से काम नहीं चलेगा। देश के छात्र-युवाओं को अब देश के पुनर्निर्माण में लगना होगा। निर्माण का काम विध्वंस के रास्ते, अराजकता के रास्ते पर चल कर नहीं हो सकता। विदेशी दासता समाप्त हुई, अब यह सृजन का पर्व है। नये भारत को गढ़ने का आन्दोलन रचनात्मक ही होगा, सर्वसमावेशी ही होगा।

अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् जैसे छात्र संगठन की तो नींव ही राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के व्यापक संदर्भ में शिक्षा क्षेत्र में एक आदर्श राष्ट्रीय छात्र आन्दोलन खड़ा करने के उद्देश्य से रखी गयी। शिक्षा जगत् के तीनों प्रमुख घटकों-विद्यार्थी, शिक्षक और शिक्षाविदों को जोड़कर एक परिवार की संकल्पना की गयी। राष्ट्र की मूल इकाई व्यक्ति को संस्कारित और सक्रिय करने तथा शैक्षिक पुनर्रचना द्वारा विद्यार्थियों में भारतीयता के संस्कार जगाकर उनकी ऊर्जा का राष्ट्रीय पुनर्निर्माण में नियोजन करने का लक्ष्य परिषद् के संस्थापकों ने छात्रों के सम्मुख रखा।

बदलता परिवेश-बदलता चरित्र

समय बदला, तो छात्र आन्दोलन का चरित्र भी बदला। ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जिन्होंने संघर्ष का बिगुल फूंका, उनमें अधिकांश विद्यार्थी थे। सावरकर, सुभाष, मदन लाल धींगरा, भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद और उनके युवा साथी अपने छात्र जीवन में ही क्रांति के मार्ग पर चल पड़े और भारत की स्वतंत्रता का पथ प्रशस्त किया।

नीतिनिर्माता और समाज, दोनों इस समय परस्पर विपरीत छोर पर थे। न समाज का हित विदेशी शासकों की प्राथमिकता में था और न ही समाज को साथ लेकर चलने की प्रवृत्ति। शासक होने का अहंकार उन्हें जनता से अलग करता था। सत्ता प्रतिष्ठान पर विदेशियों का आधिपत्य होने के कारण अब छात्र समुदाय के लिए रचनात्मक के साथ-साथ विद्रोही की भूमिका का निर्वाह भी आवश्यक था। विद्यार्थियों ने यह भूमिका बखूबी निभाई। अंग्रेजी दासता के विरुद्ध छात्रों का संघर्ष और उनके बलिदानों की गाथा भारतीय इतिहास का एक स्वर्णिम पृष्ठ है।

संघर्ष के इस महाभियान की सफल परिणति हुई भारत की स्वतंत्रता में। साथ में देश-विभाजन का दंश भी झेलना पड़ा। स्वतंत्रता आन्दोलन में राष्ट्रीय नेतृत्व के साथ कंधा-से-कंधा मिला कर चलने वाली छात्र-युवाओं की टोली को अपनी जिम्मेदारी का पूरा अहसास था। उसे मालूम था कि संघर्ष करके स्वतंत्रता प्राप्त कर लेने से अधिक चुनौतीपूर्ण और आवश्यक काम था राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का, जिसे अब पूरा करना था।

दूसरी ओर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, जो इस समूचे संघर्ष का राजनैतिक चेहरा थी, का नेतृत्व देश की प्रगति का तो इच्छुक था किन्तु सभी को साथ लेकर चलने के लिए स्वागतशील नहीं था। उसकी दृष्टि में जिन लोगों ने आन्दोलन में योगदान किया था उनकी भूमिका अब पूरी हो चुकी थी। उन्हें अब अपने-अपने कार्यक्षेत्र में वापस लौट जाना चाहिए था। नीति निर्धारण और राष्ट्रीय योजनाओं का क्रियान्वयन उसका विशेषाधिकार था।

इनमें से अधिकांश लोग विलायत से बैरिस्टरी पढ़ कर आये थे और वहां की चमक-दमक का उन पर खासा प्रभाव था। स्वयं पं. नेहरू ने सोवियत संघ का प्रवास किया था और उसके विकास से वे चमत्कृत थे। इस प्रभाव के कारण उन्हें कहीं-न-कहीं यह भी लगता था कि भारत की ग्रामीण पृष्ठभूमि वाले यह छात्र-युवा गोरे फौजियों की संगीनों के सामने अपनी छाती अड़ा देने के लिए तो उपयुक्त थे किन्तु जब बात दिल्ली को लंदन या मास्को जैसा चमकदार बनाने की हो तो उनकी भूमिका

शून्य से अधिक कुछ न थी।

अपवादों को छोड़कर उनके मंत्रिमंडलीय सहयोगियों और राज्यों के मुख्यमंत्रियों तक की मन:स्थिति भी कमो-बेश ऐसी ही थी। सत्ता पाने की सम्भावना से ही मनोवृत्तियों में कितना बदलाव आया था, यह बताने के लिए एक ही उदाहरण पर्याप्त है।

स्वतंत्रता की घोषणा से पूर्व उत्तर प्रदेश की अन्तरिम सरकार द्वारा शिक्षण शुल्क में वृद्धि के विरोध में छात्रों ने आंदोलन किया। 4 अगस्त 1947, अर्थात् स्वतंत्रता से दस दिन पूर्व छात्रों का प्रतिनिधिमंडल शिक्षामंत्री डॉ. सम्पूर्णानन्द से मिला तथा फीस वृद्धि के कारण छात्रों को होने वाली दिक्कतों की जानकारी दी। 15 अगस्त को विभाजन के बाद उत्पन्न परिस्थितियों को देखते हुए यह आन्दोलन तात्कालिक रूप से रोक दिया गया। सितम्बर माह में यह आन्दोलन पुन: प्रारंभ हुआ।

24 सितम्बर 1947 को गोरखपुर में आंदोलनकारियों पर पुलिस द्वारा गोली चलाये जाने के बाद आंदोलन पूरे प्रदेश में फैल गया। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. राधाकृष्णन (जो बाद में भारत के राष्ट्रपति बने) ने प्रस्ताव रखा कि दोनों पक्ष इस मामले में आचार्य नरेन्द्र देव को मध्यस्थ मान कर मामले को सुलझायें। विद्यार्थियों ने लखनऊ में बैठक कर आचार्य नरेन्द्रदेव की मध्यस्थता स्वीकार करने पर अपनी सहमति दे दी। किन्तु डॉ सम्पूर्णानन्द ने कहा-'मुझे आश्चर्य है कि राधाकृष्णन जैसे उत्तरदायी व्यक्ति छात्रों और सरकार के बीच समझौते की सलाह देते हैं। समझौते की वार्ता दो बराबर के दलों में चलती है। अत: मंत्रिमंडल ने निश्चय किया है कि वह छात्रों के साथ किसी भी प्रकार के समझौते की बात नहीं करेगा।'

यहां यह उल्लेखनीय है कि अध्यापकों का वेतन बढ़ाने में राजकोष पर पड़ने वला 30 लाख रुपए का व्यय सरकार छात्रों की फीस दोगुनी कर वसूलना चाहती थी। जबकि इसी समय इसी मंत्रिमंडल ने लखनऊ में अधिक गर्मी होने के कारण विधानसभा का सत्र नैनीताल की पहाड़ियों में आयोजित करने के लिए 25 लाख रुपए का बजट स्वीकृत किया था।

भारतीय नेताओं के सत्ता में आने के बाद उन्होंने भी अंग्रेजों की तर्ज पर ही हुकूमत करनी शुरू की। परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजों के तौर-तरीकों का विरोध करने वाला छात्र-युवा नवगठित सरकार की खिलाफत करने के लिए मजबूर हुआ। इस विरोध को संवाद द्वारा समाप्त करने के स्थान पर शासन-प्रशासन ने दमन का सहारा लिया और पुलिस के बल पर कुचलने की कोशिश की। यहीं से सत्ता और जनता के बीच दूरी बढ़ती चली गयी।

छात्र आन्दोलनों के दमन और छात्र प्रतिरोध का सिलसिला बढ़ता गया। इस क्रम में अनेक बार लोकतंत्र लहूलुहान हुआ तो गुजरात का नवनिर्माण आन्दोलन, बिहार का सम्पूर्ण क्रांति आन्दोलन तथा असम के घुसपैठ विरोधी आन्दोलन जैसे ऐतिहासिक अवसर भी आये। इन सभी अवसरों पर आंदोलनकारी छात्रों का नेतृत्व करने वाले लोगों ने ही सत्ता संभाली। वह चाहे लालू यादव हों, प्रफुल्ल महंत हों अथवा शरद यादव, नितीश कुमार आदि, सभी छात्र आन्दोलन से ही उभरे और राष्ट्रीय राजनीति में स्थान प्राप्त किया। लेकिन जिन छात्रों का नेतृत्व कर वे इस मुकाम तक पहुंचे, उसकी आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं को अभिव्यक्त अथवा सम्बोधित करने में असफल रहे। परिणामस्वरूप छात्रों की आज की पीढ़ी निराश है, हताश है।

यह विश्वास का संकट है। न तो छात्र-युवाओं की परिवर्तनकारी भूमिका के बिना राष्ट्र पुनर्निर्माण का स्वप्न साकार होगा और न ही राष्ट्रीय नेतृत्व द्वारा विश्वास की बहाली के गंभीर प्रयासों के बिना विद्यार्थियों की भागीदारी सुनिश्चित होगी। विश्वविद्यालयों के परिसर जीवंत बनें, स्पंदनयुक्त हों, राष्ट्र पुनर्निर्माण के गीतों से गूंज उठें तभी सशक्त, समृद्ध और स्वाभिमानी भारत गढ़ा जा सकेगा।

आपातकाल के संघर्ष में सहभागी रहे विद्यार्थियों को भी निराशा के प्राय: उसी अनुभव से गुजरना पड़ा जिससे स्वतंत्रता प्राप्ति के समय की पीढ़ी गुजरी थी। फलत: जनता पार्टी की सरकार के गठन का साल बीतते-न-बीतते छात्रों के बीच एक और आन्दोलन की भूमिका बनने लगी। 14 मार्च 1978 को छात्र संगठनों द्वारा बिहार के मुख्यमंत्री को सौंपे गये ज्ञापन से तत्कालीन छात्रों की मनोभूमिका पर प्रकाश पड़ता है। इसी अंक में दस्तावेज स्तंभ के अंतर्गत यह ज्ञापन प्रकाशित किया गया है।

वर्तमान परिदृश्य

आज विश्वविद्यालयों के परिसर स्पंदनहीन हो गये हैं। '60, '70 और '80 दशक की जीवंतता के स्थान पर अब वहां सन्नाटा पसरा है। अधिकांश महाविद्यालयों में छात्र-संघ चुनावों पर रोक लगा दी गयी है। छात्र-नेताओं के कद बौने होते जा रह हैं और आवाज कमजोर।

प्रधानाचार्यों और कुलपतियों के दफ्तरों में बोनसाई की तरह सजे छात्र-नेताओं की जमात उनकी चापलूसी और जी-हजूरी में ही दिन बिताती है। आंदोलन ही नहीं, मानवीय सरोकारों से जुड़े आयोजन भी अब बीती बात हो चुके हैं। साहित्य संध्या, कवि सम्मेलन और नाट्य क्लब परिसरों से कब के निर्वासित हो चुके हैं। खेल-कूद, एनसीसी और एनएसएस का भी बुरा हाल है। वार्षिकोत्सव

के नाम पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा प्रायोजित फूहड़ फिल्मी गानों पर अश्लील ढंग से थिरकते नौजवान समाज में छीजते मूल्यों की गवाही देते प्रतीत होते हैं। कुल मिलाकर शिक्षा परिसरों में सांस्कृतिक उजाड़ का परिदृश्य उभर रहा है।

देश के प्रतिष्ठित शिक्षा संस्थानों में आज आतंकवादी पनाह पा रहे हैं। संसद पर हमला करने के दोषियों को दिल्ली विश्वविद्यालय परिसर से पकड़ा गया। दिल्ली पुलिस के जांबाज अधिकारी मोहनचंद शर्मा के कातिलों को कानूनी सहायता देने के लिए जामिया विश्वविद्यालय ने आर्थिक सहायता उपलब्ध करायी। उनके बचाव के लिए घोषित रूप से समिति बनी जिसमें वहां के प्राध्यापक भी शामिल हुए। उनके लिए सार्वजनिक रूप से धन भी एकत्र किया गया।

अंतरराष्ट्रीय पत्रिका टाइम ने तीन-चार वर्ष पूर्व पाकिस्तान के विश्वविद्यालयों का अध्ययन कर एक रिपोर्ट प्रकाशित की थी। इसके अनुसार इन विश्वविद्यालयों में 20 साल पहले छात्र संघों और छात्र संगठनों की गतिविधियों पर रोक लगा दी गयी। नतीजा यह हुआ कि परिसरों में लोकतांत्रिक गतिविधियां ठहर गयीं। इस स्थिति का लाभ उठाते हुए कट्टरपंथी तत्वों ने परिसरों में अपनी जड़ें जमा लीं। छात्रों की ऊर्जा उन्हें शांत होकर बैठने की अनुमति नहीं देती। अत: लोकतांत्रिक संस्थाओं की अनुपस्थिति में उन्होंने जमायते इस्लामी जैसे संगठनों का दामन थाम लिया। देखते ही देखते विश्वविद्यालय परिसरों में अलगाववाद और आतंकवाद की फसल लहलहा उठी।

आज भारत के अधिकांश विश्वविद्यालय भी इस राह पर हैं। इन विश्वविद्यालयों में छात्र-संघों के प्रत्यक्ष चुनाव पर रोक है। छात्रों के अपना प्रतिनिधि चुनने के लोकतांत्रिक अधिकार का हनन हो रहा है। उसी परिसर में शिक्षक संघ के चुनावों पर आपत्ति नहीं, कर्मचारी संघ के चुनाव पर आपत्ति नहीं, यहां तक कि प्रधानाचार्य तथा कुलपतियों की भी समितियां और संगठन हैं, किन्तु यह सारे विश्वविद्यालय जिसके लिए खोले गये हैं, उन विद्यार्थियों के लिए ही अपना प्रतिनिधि चुनना प्रतिबंधित है।

चुनाव आयोग देश में लोकसभा, विधानसभा और स्थानीय निकायों के चुनाव तो सफलतापूर्वक सम्पन्न करवा सकता है किन्तु छात्र-संघों के चुनाव के विषय में वह भी नकारात्मक सोच प्रकट करता है। जहां चुनाव हो भी रहे हैं वहां प्रत्याशियों पर नितांत अव्यवहारिक नियम थोपे जा रहे हैं जिनके चलते चुनाव मखौल बन कर रह गये हैं।

छात्र-संघ चुनाव के अध्ययन के लिए गठित लिंगदोह समिति यद्यपि इन चुनावों से अनेक बुराइयों को दूर करने का प्रयास करती है किन्तु वह भी प्रत्यक्ष के स्थान पर अप्रत्यक्ष चुनावों को ही वरीयता देती है। साथ ही वह प्रत्याशी पर इतने बंधन आरोपित करती है जिनकी अपेक्षा स्वयं विश्वविद्यालय भी अपने विद्यार्थियों से नहीं करते।

वैश्वीकरण के दौर में सारी व्यवस्थाएं बाजार के अनुकूल गढ़ने की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। भारी मात्रा में उत्पादन करने और उसे दुनियाभर के बाजारों में खपाने का प्रयोग तो औद्योगिक क्रांति के समय से ही जारी था। वैश्वीकरण ने इसे एक सुगठित रूप और अंतरराष्ट्रीय वैधता प्रदान की। इसके कारण बाजार की गतिविधियों में रूकावट डालने का हर प्रयास और हर माध्यम अवांछित माना गया। उद्योगों की मजदूर यूनियनें और उनके संगठन पहले से ही बाजार के निशाने पर थे। वे आंदोलन करते थे, हड़तालें करते थे, मजदूरों के लिए अधिक सुविधा और सुरक्षा की मांग करते थे। इसलिए वैश्वीकरण की पहली गाज उन्हीं पर गिरी। धीरे-धीरे मजदूर संघ अपनी धार खो बैठे।

शिक्षा परिसरों में छात्र-संघों और छात्र संगठनों की भूमिका का सादृश्य मजदूर संघों से मानते हुए उन्हें भी निष्प्रभावी करने के प्रयास प्रारंभ हुए और इसमें बड़ी हद तक सफलता भी मिली। अब तक शिक्षा भी बाजार के ढर्रे पर चल निकली थी और विश्वविद्यालयों की नकेल कार्पोरेट जगत ने संभाल ली थी इसलिए यूनियनें वहां भी अवांछित हो गयीं। मोटी फीस चुका कर पांचसितारा सुविधाओं से युक्त संस्थानों में अपनी संतानों को प्रवेश दिलाने वाले नवधनाढ्य वर्ग को लोकतांत्रिक मूल्यों से कोई सरोकार न था।

शासन-प्रशासन के लिए यह स्थिति अत्यंत सुविधाजनक होती है जब उनसे सवाल करने वाला कोई न हो, हिसाब मांगने वाला कोई न हो, विरोध करने वाला कोई न हो और मनमानी करने से रोकने वाला भी कोई न हो। लेकिन किसी देश के लिए, विशेषत: भारत जैसे लोकतांत्रिक देश के लिए यह खतरे की घंटी से कम नहीं।

जीवंत छात्र आन्दोलन के समय में भी भारत को निरंकुश तानाशाही का दौर देखना पड़ा है। अगर देश के शिक्षा परिसरों की जीवंतता पूरी तरह नष्ट हो गयी, अगर शिक्षा क्षेत्र पूरी तरह बाजार के कब्जे में चला गया, अगर छात्रों की आवाज उठाने वाले छात्र संगठन किसी षड्यंत्र के चलते अप्रासंगिक हो गये, तो देश के सम्मुख चुनौती उपस्थित होने पर परिवर्तन का आह्वान कौन देगा? कौन सामना करेगा लोकतंत्र का गला घोंटने के प्रयासों का? कौन करेगा अन्याय, अत्याचार, अशिक्षा, शोषण और भ्रष्टाचार का प्रतिरोध? यही है आज के यक्षप्रश्न, जिनका उत्तर हम सबको मिलकर ढूंढना होगा।

छात्र आन्दोलन और छात्र निर्माण

■ मदनदास

छात्र आन्दोलन के सामने बहुत चुनौतियां है। विविध पाठ्यक्रम शुरू होने से परिसर का स्वरूप बदला है। इस कारण कैरियरिज्म आया है। तकनीकी शिक्षा व नयी कौशल युक्त विधाओं में काम करने का छात्रों को मौका मिल रहा है। विदेशी विश्वविद्यालयों में पढ़ने का मौका मिल रहा हे। नौकरियां भारत में और विदेशों में प्राप्त हो रही है। IT में काम करने का अवसर मिल रहा है।

लेकिन प्राथमिक शिक्षा से Dropout की संख्या अभी भी 60% से कम नहीं हुई है। ग्रामीण क्षेत्र के विद्यालय पढ़ाने के नाम पर खानापूर्ति करते हैं। इस कारण अशिक्षित बेरोजगारों की संख्या बढ़ रही है। गरीब व अमीर में अन्तर बढ़ रहा है। देहात से प्रचण्ड प्रमाण में शहरों की ओर पलायन हो रहा है। ऐसी स्थिति में छात्र आन्दोलन नाम की चीज़ जो मुख्यत: क्षेत्रीय परिवर्तन व छात्रों के जुड़ाव से सम्बद्ध है।

1) आज शिक्षा के व्यापारीकरण के दौर में जो पैसा खर्च कर सकते हैं वही शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। यह छात्र आंदोलन के सम्मुख चुनौती है।

2) दूसरी ओर पर्यावरण देखे तो पानी का स्तर नीचे जाना, ग्लोबल वार्मिंग की दृष्टि से कार्बन इमीशन का प्रमाण बढ़ना, विकसित देशों का विकासशील देशों पर कार्बन इमीशन कम करने का दबाव भी एक चुनौती है।

वहीं एक ओर विद्यार्थियों का सामाजिक परिवर्तन के लिए भी प्रयास आवश्यक है। सुदूर वनवासी क्षेत्र में जिस प्रकार का वातावरण बनाया जा रहा है उससे हिंसाचार, आतंक बढ़ रहा है, इस कारण जनजीवन, विकास आदि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। यह चुनौती भी विद्यार्थी के सम्मुख है।

'खाओ, पिओ और मजा करो' वाला भौतिक चिंतन विद्यार्थी में बढ़ रहा है। यह एक चुनौती भी विद्यार्थी आन्दोलन के सामने है कि कैसे उन्हें देश व समाज की ओर उन्मुख करें। उनकी शक्ति का उपयोग देश के, समाज के हित में हो, यह भी एक चुनौती अभाविप के सम्मुख है।

पूरी तरह से छात्र आन्दोलन खत्म हो गया, यह अर्धसत्य है। राजनीति से छात्र आन्दोलन प्रेरित है, यह भी अर्धसत्य है। कोई भी आन्दोलन बाह्य परिस्थिति के संदर्भ में देखा जाता है। जब विद्यार्थी ने महंगाई व भ्रष्टाचार को चुनौती देने का प्रयत्न किया तो उस समय अन्य दलों ने आकर उसका राजनैतिक उपयोग किया। इसलिए अभाविप ने राजनीति से अलिप्त रहते हुए स्वतंत्र छात्र संगठन के रूप में काम किया। अत: छात्र आन्दोलन राजनीतिक हो गया, यह पूर्णसत्य नहीं है।

अ.भा.वि.प. राष्ट्र के पुनर्निर्माण के लक्ष्य के लिए काम कर रही है। किन्तु राष्ट्र परिवर्तन या राष्ट्र पुनर्निर्माण, व्यक्ति निर्माण से संभव है। व्यक्ति निर्माण या व्यक्ति परिवर्तन सद्गुणों की वृद्धि से हो सकती है एवं सद्गुणों में वृद्धि प्रेरणा देने से संभव है। यह सब बातें विद्यार्थी परिषद् के माध्यम से हो सकती है। यह प्रेरणा जीवन का अंग बनना चाहिए। उससे देश के लिए विद्यार्थी शक्ति को बड़े परिमाण में लाभ होगा।

परंतु विद्यार्थी नागरिक भी है इसलिए अगर वह सामाजिक समस्याओं के प्रश्न राजनीति से पूछता है या राजनीति में सक्रिय होता है, या छात्र संघ चुनाव में भाग लेता है, इसमें कुछ गलत भी नहीं है।

यह कहना छात्र आन्दोलन हिंसक है, यह छात्र आन्दोलन के साथ अन्याय है। कश्मीर आन्दोलन हुआ, 10,000 से अधिक छात्र श्रीनगर

के लालचौक पर तिरंगा फहराने गये। देश की सुरक्षा के विषय पर छात्र ने निर्णायक संघर्ष किया। कोई हिंसा नहीं हुई।

शिक्षा के व्यापारीकरण के विरोध में दिल्ली में 2002 में 75,000 छात्रों ने रैली की। जिसमें सब छात्र ट्रेन व बस का किराया देकर आए। कहीं कोई दुर्घटना, कोई हिंसा, लूटपाट की कोई घटना नहीं हुई।

घुसपैठ के खिलाफ आन्दोलन में 50,000 विद्यार्थियों ने किशनगंज में रैली की। कहीं पर कोई हिंसा नहीं हुई।

आपातकाल के पहले और बाद में तात्कालिक राजनैतिक परिवर्तन के रूप में जो परिणाम हुआ, वह हर बार अपेक्षित नहीं है। पूर्वाग्रह के दृष्टिकोण से छात्र आन्दोलन को देखना ज्यादा राजनैतिक है बनिस्पत राजनैतिक आन्दोलन के।

पूरी तरह से छात्र आन्दोलन खत्म हो गया, यह अर्धसत्य है। राजनीति से छात्र आन्दोलन प्रेरित है, यह भी अर्धसत्य है। कोई भी आन्दोलन बाह्य परिस्थिति के संदर्भ में देखा जाता है। जब विद्यार्थी ने महंगाई व भ्रष्टाचार को चुनौती देने का प्रयत्न किया तो उस समय अन्य दलों ने आकर उसका राजनैतिक उपयोग किया। इसलिए अभाविप ने राजनीति से अलिप्त रहते हुए स्वतंत्र छात्र संगठन के रूप में काम किया। अतः छात्र आन्दोलन राजनीतिक हो गया यह पूर्णसत्य नहीं है।

छात्रों के तकनीकी विषयों की ओर मुड़ने से छात्र आन्दोलन में थोड़ी कमी आई है। कॉलेज का वातावरण परिवर्तित हुआ है। विद्यार्थियों का सामाजिक प्रश्नों के साथ जुड़ना, राष्ट्रीय प्रश्नों के साथ जुड़ना, शिक्षा के व्यापारीकरण व उसके दुष्परिणाम के बारे में जागरूक करना उसे छात्र आन्दोलन कहा जाता है।

इस वर्ष बिहार में AMU की शाखा खुलने के खिलाफ विद्यार्थियों का प्रदर्शन हुआ। उन पर लाठीचार्ज होने के बाद बिहार बंद रहा। पर आन्दोलन का प्रभाव होता है। इसलिए छात्र आन्दोलन समाप्त हो गया, यह यथार्थ नहीं है। छात्रों की समस्या से सम्बद्ध विषय उठाने पर छात्र आज भी एकत्र आता है।

सोशलसाइट्स/आरकुट/फेसबुक/ ट्वीटर/ब्लॉग के माध्यम से छात्र अपनी बात व समस्या के बारे में सामान्य जन व सरकार को सहज तरीके से बता पाते हैं। इंटरनेट एक सशक्त माध्यम बना है। Expression of thought व Collection of knowledge बना है। इसी क्रम में अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् ने Vidhyapatha.com प्रारंभ किया। इस प्रकार जो नये रास्ते प्राप्त हुए हैं इनका उपयोग ठीक ढंग से करने की जिम्मेदारी वर्तमान पीढ़ी की है।

छात्र आन्दोलन का तात्कालिक स्वरूप एक अलग विषय है। उसमें सफलता, विफलता, समझौता, चुनाव ये सब विद्यार्थी शक्ति का प्रकटीकरण है जिससे विद्यार्थियों का नेतृत्व उभरता है।

लेकिन छात्र आन्दोलन से जब सामाजिक दृष्टि, जीवन दृष्टि मिले तब ही छात्र आन्दोलन की सार्थकता है।

जब आज का विद्यार्थी समाज जीवन में जाएगा तो वह समाज को सहयोग करे। विद्यार्थी परिषद् के माध्यम से उसे एक ऐसी दृष्टि मिलनी चाहिए कि वह एक आदर्श प्रस्तुत करे। भ्रष्टाचार, शिक्षा का व्यापारीकरण, भौतिकवाद, व्यक्तिवाद सब तरफ है। यह सब कहना बहुत सरल है केवल उस समय ही उसका प्रभाव नहीं, बल्कि जीवन भर उसका प्रभाव रहना चाहिए।

जितनी चुनौतियां समाज के सम्मुख है उनके समाधान के लिए व्यक्तिगत रूप से या संगठित रूप से प्रयास आवश्यक है। जो राजनीति में जाते है, जाएं, परन्तु सामाजिक दृष्टि से जाए, एवं समाज के सर्वांगीण विकास के लिए कुछ योगदान करें।

अ.भा.वि.प. राष्ट्र के पुनर्निर्माण के लक्ष्य के लिए काम कर रही है। किन्तु राष्ट्र परिवर्तन या राष्ट्र पुनर्निर्माण, व्यक्ति निर्माण से संभव है। व्यक्ति निर्माण या व्यक्ति परिवर्तन सद्गुणों की वृद्धि से हो सकता है एवं सद्गुणों में वृद्धि प्रेरणा देने से संभव है। यह सब बातें विद्यार्थी परिषद् के माध्यम से हो सकती है। यह प्रेरणा जीवन का अंग बनना चाहिए। उससे देश के लिए विद्यार्थी शक्ति को बड़े परिमाण में लाभ होगा।

(लेखक रा.स्व.संघ के अखिल भारतीय प्रचारक प्रमुख हैं एवं अ.भा.वि.प. के राष्ट्रीय संगठन मंत्री रहे हैं)

सतत् विद्यमान है छात्रों की आन्दोलनपरता

■ राजकुमार भाटिया

बीसवीं सदी के आठवें व नवें दशकों में गुजरात, बिहार एवं असम आदि के छात्र आन्दोलनों की पृष्ठभूमि में भूतकाल में अथवा वर्तमान में छात्र संगठनों से जुड़े अथवा छात्र आन्दोलन में रूचि रखने वाले लोगों के मन में प्राय: यह प्रश्न पैदा होते हैं कि क्या भारत का छात्र आन्दोलन अभी जीवित है एवं क्या भारत के सार्वजनिक जीवन में वह कोई भूमिका निभाने की स्थिति में है?

प्रश्नों के उत्तर ढूंढने के लिए छात्र आन्दोलन को दो भागों में समझना पड़ेगा। एक, छात्र समुदाय की आन्दोलनपरता के मूल विषय के रूप में, व दो, छात्र जगत् में सक्रिय ऐसे तत्वों के रूप में जो छात्र आन्दोलन को मूर्त रूप दे सकते है।

पहले भाग की बात करें। यह उसी प्रकार का विषय है जैसा किसी समाज में युवाओं की भूमिका का होता है। सम्भवत: यह एक निर्विवाद समाजशास्त्रीय तथ्य है कि किसी समाज में मूल्यों एवं आदर्शों की ज्योति जलाए रखने में युवा वर्ग सबसे आगे रहता है। उसी प्रकार का विषय छात्रों की भूमिका होता है। अभाविप द्वारा प्रस्थापित 'छात्र आज का नागरिक है' के सिद्धान्त एवं 'छात्रशक्ति-राष्ट्र शक्ति' की संकल्पना के अंतर्गत यह भी एक समाज शास्त्रीय तथ्य है कि आधुनिक संदर्भ में एक समाज में छात्रों की आन्दोलनपरता सदा विद्यमान रहती है।

अब दूसरे भाग की बात करें। यदि यह दिखाई देता हो कि भारत के छात्र जगत् में ऐसे तत्व सक्रिय है जो आन्दोलन को मूर्त रूप दे सकते हैं तो छात्र आन्दोलन को मृत मानना कहां तक तर्कसंगत होगा? कम से कम अभाविप के रूप में जिस प्रकार की नित्यसिद्ध छात्र शक्ति देश में विद्यमान है उसके रहते तो छात्र आन्दोलन को मृत नहीं कहा जा सकता।

एक प्रश्न और भी खड़ा किया जाता है कि क्या देश में कुछ ऐसे मुद्दे हैं जिन पर छात्र आन्दोलन आवश्यक है? उत्तर बहुत सरल है। प्रश्न यह पूछें कि क्या देश में ऐसे विषय हैं जिसके विरोध अथवा समर्थन में कुछ होना चाहिए। उत्तर यदि हां में है तो मुद्दे स्वयं सामने आ जाते है। विरोध के कुछ मुद्दे गिनें-भ्रष्टाचार, जातिवाद, विषमता, इस्लामी कट्टरता, शिक्षा का व्यापारीकरण, वंशवादी राजनीति, उपभोक्तावाद, सांस्कृतिक पतन आदि आदि। और समर्थन के कुछ मुद्दे-पर्यावरण सुरक्षा, व्यवस्था परिवर्तन, अध्यात्म का महत्व, स्वदेशी, राष्ट्रीय स्वाभिमान, नागरिक धर्म आदि आदि। सम्भवत: और मुद्दे भी देश में हैं।

मूर्तरूपी आन्दोलन का अर्थ होता है ऐसा सामाजिक उद्वेलन जिसमें से शुभ की प्राप्ति हो व अशुभ का शमन हो। एक जीवित समाज में उद्वेलन के लायक मुद्दे होते ही हैं जिनसे समाज की प्रगति निर्धारित होती है। केवल सामाजिक प्रतिबद्धता वाले व्यक्तियों अथवा संगठनों का ध्यान उस ओर जाना चाहिए।

(लेखक अ.भा.वि.प. के पूर्व राष्ट्रीय अध्यक्ष हैं)

यह एक निर्विवाद समाजशास्त्रीय तथ्य है कि किसी समाज में मूल्यों एवं आदर्शों की ज्योति जलाए रखने में युवा वर्ग सबसे आगे रहता है। उसी प्रकार का विषय छात्रों की भूमिका होता है। अभाविप द्वारा प्रस्थापित 'छात्र आज का नागरिक है' के सिद्धान्त एवं 'छात्रशक्ति-राष्ट्र शक्ति' की संकल्पना के अंतर्गत यह भी एक समाज शास्त्रीय तथ्य है कि आधुनिक संदर्भ में एक समाज में छात्रों की आन्दोलनपरता सदा विद्यमान रहती है।

व्यवस्था की जड़ता को तोड़ता है छात्र आन्दोलन

■ डा. महेशचन्द्र शर्मा

छात्र आन्दोलन आधुनिक सार्वजनिक जीवन का एक स्वाभाविक हिस्सा है। विशेषकर उच्च शिक्षा में अध्ययनरत छात्र, जो कि वयस्क है तथा मतदाता भी है। वह निश्चय ही 'कल का नहीं वरन् आज का नागरिक है। समझौतापरस्त सार्वजनिक जीवन में आदर्श हस्तक्षेप का प्रतिनिधि बन जाता है। छात्र आन्दोलन बहुत पुरानी घटनाओं एवं दुनिया के विभिन्न देशों के आन्दोलनों की कहानी के बजाय हमें अपने ही जीवन काल की घटनाओं से इसे समझना चाहिये।

1974 का बिहार-गुजरात आन्दोलन, जो व्यवस्थागत यथा-स्थितिवाद एवं भ्रष्टाचार के खिलाफ युग के युवा की हुंकार के समान था, प्रथमतः वह छात्र आन्दोलन ही था। इसी आन्दोलन ने अपने युग के वयोवृद्ध लेकिन क्रांतिधर्मी बीज बाबू जयप्रकाश नारायण को पुनः सार्वजनिक जीवन में आने के लिये बाध्य कर दिया। बाबू जयप्रकाश नारायण का जीवन सुदीर्घ तपस्या एवं परिपक्व अनुभवों का पुंज था। युवकोचित प्रखरता, आदर्शवाद, बलिदान की क्षमता एवं उत्साह के पुंज छात्र आन्दोलन को जयप्रकाश का नेतृत्व प्राप्त हुआ, परिणामतः सम्पूर्ण राष्ट्र ही आन्दोलन का मंच हो गया। घबराई राज्य शक्ति ने आपातकाल का कवच ओढ़ लिया, लोकतंत्र की हत्या कर दी गयी। पुनः आपातकाल के खिलाफ जो चुनौतीपूर्ण आन्दोलन हुआ, उसमें छात्रों की भूमिका सब से बड़ी रही। 60% से ज्यादा सत्याग्रही छात्र थे। आपातकाल परास्त हुआ। लोकतंत्र का पुनरोदय हुआ। यह सिद्ध हुआ कि 'छात्र शक्ति वस्तुतः राष्ट्रशक्ति' है। ये तो युगांतकारी आन्दोलन थे, ऐसे आन्दोलन रोज नहीं हुआ करते।

व्यवस्था को जकड़ने वाले यथास्थितिवाद को तोड़ने के लिये सदैव ही छात्र आन्दोलन की आवश्यकता रहती है। शिक्षा का जिस तरह बाजारीकरण हो रहा है, निश्चय ही इसके खिलाफ छात्र आन्दोलन की आवश्यकता है। भारत का छात्र सामान्यतः अपने माता-पिता के खून-पसीने की कमाई से शिक्षा पाता है। व्यवस्था में व्याप्त अनीति एवं कदाचार के कारण बढ़ती महंगाई को आज का उच्च शिक्षा में रत छात्र ज्यादा अच्छी प्रकार से समझता है। यदि वह इस कारण आन्दोलनमान होता है तो इसे अस्वाभाविक नहीं कहा जाना चाहिये। शिक्षा परिसरों में बढ़ती घिनौनी राजनीति एवं नौकरशाहीकरण, अकादमिक वातावरण को लील रहा है, इसके खिलाफ छात्रों को आन्दोलित होना चाहिये। संवेदनहीन व्यवस्थायें तथ्य एवं तर्कों के आधार पर नहीं वरन् निहित स्वार्थों के हितार्थ अनेक निर्णय छात्रों पर आरोपित करती है। यथा कम्प्यूटर लॉबी को खुश करने के लिये तथा उनसे अपने हितों को साधने के लिये बिना बिजली व कक्षों की व्यवस्था किये तथा बिना उपयुक्त अध्यापकों की व्यवस्था के कम्प्यूटर शिक्षा को अनिवार्य कर छात्रों से शुल्क वसूल लिया जाता है, ऐसे अनेक मुद्दे होते है। छात्र आन्दोलन ही इन कुप्रवृत्तियों को नियंत्रित करने का एक मात्र साधन है।

'आज के छात्र आन्दोलन के लिये कोई विषय अविषय नहीं रहता। समाज का प्रत्येक विषय छात्र का विषय है, क्योंकि वह वयस्क नागरिक के रूप में समाज का हिस्सा है। छात्र आन्दोलन की इस युगीन प्रासंगिकता को सफल कर छात्र संगठनों को अपना दायित्व निभाना चाहिये तथा समाज को इसके लिये सहकारी की भूमिका स्वीकार करनी चाहिये।

नौजवान कभी-कभी अति उत्साह में व्यावहारिक गलतियाँ करते है, कभी-कभी राजनेता उन्हें अपने चंगुल में फंसा

लेते है तथा कभी-कभी अवांछनीय तरीके भी इन आन्दोलनों में घुस जाते है। ऐसे में प्राध्यापक वर्ग का कर्तव्य बनता है कि वे छात्रों के आन्दोलन का समुचित मार्गदर्शन करें तथा समाज के संजीदा लोग छात्रों के साथ आकर खड़े हो।

छात्र आन्दोलनरत है तथा सभी प्राध्यापक उससे विरत है, इसी प्रकार छात्र आन्दोलनरत है तथा समाज का सक्रिय तथा संजीदा वर्ग उससे निरपेक्ष बना हुआ है, यह भी एक अवांछनीय स्थिति है। छात्रों की अपरिपक्वता को कुछ पूरक सहायता चाहिये होती है। इन पूरक सहायताओं के लिये समाज यदि तैयार नहीं है तो उन्हें अपने बच्चों की अपरिपक्वता के परिणामों को भुगतना चाहिये। इन कारणों से छात्र आन्दोलनों को दोषी ठहराना अनुचित है।

परीक्षा का अकादमिक वातावरण मुख्यत: प्राध्यापकों एवं प्रशासन के नजरिये पर निर्भर रहता है। छात्र आन्दोलन से यह वातावरण नहीं बिगड़ता। वास्तव में योग्य अकादमिक वातावरण तो आन्दोलन की सार्थकता का कारण बनता है। अकादमिक रूप से दक्ष एवं सचेत आन्दोलनकारी ज्यादा गम्भीर एवं जिम्मेदार होता है। शिक्षा परिसरों में अकादमिक वातावरण के बिगड़ने के लिये जिम्मेदार तो कुलपतियों एवं प्राध्यापकों की नियुक्ति में होने वाली राजनीति है। अकादमिक दृष्टि से शून्य प्रशासन, आग में घी का काम करता है। विश्वविद्यालयों का खत्म होती स्वायत्तता एवं सीनेट, सिन्डीकेट एवं एकेडेमिक काउंसिल जैसे निकायों का निष्प्रभ हो जाना, इनमें नौकरशाही का अवांछनीय प्रभाव हो जाना आदि ऐसे कारक है जिन्होंने विश्वविद्यालयों के अकादमिक वातावरण को शिथिल किया है। छात्र संघ के चुनाव या छात्र आन्दोलनों पर यह तोहमत मढ़ना 'उलटा चोर कोतवाल को डाँटे' वाली कहावत को चरितार्थ करना है। 'आज के छात्र आन्दोलन के लिये कोई विषय अविषय नहीं रहता। समाज का प्रत्येक विषय छात्र का विषय है, क्योंकि वह वयस्क नागरिक के रूप में समाज का हिस्सा है। छात्र आन्दोलन की इस युगीन प्रासंगिकता को सफल कर छात्र संगठनों को अपना दायित्व निभाना चाहिये तथा समाज को इसके लिये सहकारी की भूमिका स्वीकार करनी चाहिये।

(लेखक अ.भा.वि.प. के पूर्व क्षेत्रीय संगठन मंत्री, उत्तर पश्चिमांचल क्षेत्र, वर्तमान में एकात्म मानव दर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान के अध्यक्ष है)

सम्पर्क : 31, फिरोजशाह रोड, नई दिल्ली

राष्ट्रीय छात्रशक्ति पत्रिका के 32 वर्ष पूर्ण करने पर

भंवर सिह पलाडा

भाजपा नेता

शुभकामना

सुशील कंवर पलाडा

जिला प्रमुख,अजमेर

विद्यार्थी परिषद् : छात्र आन्दोलन का पर्याय

■ डॉ. कैलाश शर्मा

2007 के अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद्, राजस्थान का प्रदेश अधिवेशन बीकानेर में आयोजित हुआ था। विद्यार्थी परिषद् के पूर्वकार्यकर्ता और वरिष्ठ पत्रकार श्री रामबहादुर राय मुख्य अतिथि के नाते वहां पर आये थे। बातचीत से लगा कि श्री रामबहादुर जी जैसे कई लोगों को लगता है आजकल छात्र आन्दोलन नहीं रहे। मुझे ठीक से ध्यान है तो उन्होंने शब्द प्रयोग किया कि छात्र आन्दोलन आजकल मृत हो गये हैं। विद्यार्थी परिषद् के साथ लगभग 35-36 वर्षों के सम्पर्क और लगभग 25 वर्षों के सक्रिय सहभाग के कारण इस बात से मैं सहमत नहीं हो सका कि आजकल छात्र आन्दोलन मृत हो गये हैं। हां विभिन्न विचारधाराओं के आधार पर छात्र समूहों या संगठनों की उतनी सक्रियता जिसमें परिसरों में वैचारिक आधार पर चर्चा-बहस आदि होती थी, उसमें कुछ कमी जरूर हैं। परन्तु अभाविप के नेतृत्व में परिसरों में छात्र सक्रियता लगातार बनी हुई है। जो कालान्तर में सरकारों और विश्वविद्यालय प्रशासन की मिलीभगत से छात्रसंघों पर प्रतिबन्ध या रोक लगाने और छात्र सक्रियता को कुचलने के प्रयासों के बावजूद लगातार यह हो रहा है। यह भी एक उल्लेखनीय तथ्य है कि केवल छात्रसंघों के चुनावों के समय दिखाई देने वाला संगठन एन.एस.यू.आई और दुनियाभर में वैचारिक दृष्टि से पराभूत साम्यवादी विचार आधारित छात्र संगठन या तो खत्म हो गये हैं या इक्का-दुक्का स्थानों पर जाति/वर्ग के आधार पर कुछ गतिविधियां चलाते हुए अपनी अंतिम सांसें गिन रहे हैं।

मुझे निःसंकोच यह उल्लेखित करने में हर्ष भी है कि परिसरों के माध्यम से शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक, राष्ट्रीय मुद्दों पर परिषद् लगातार अपनी भूमिका का निर्वहन करती रही है। छोटे-बड़े स्थानीय और राष्ट्रीय मुद्दों पर परिषद् ने लगातार संघर्ष किया है। 1990 में 10 हजार छात्र-छात्राओं का कश्मीर मार्च, 2002 में शिक्षा और रोजगार विषय पर दिल्ली में 75000 छात्र-छात्राओं का मोर्चा और 2008 में बांग्लादेशी घुसपैठ के विरोध में 40000 छात्र-छात्राओं का चिकननेक (किशनगंज) आंदोलन यह बताने के लिए सम्भवतः पर्याप्त है कि भारत में छात्र आंदोलन अभी जीवित ही नहीं अपितु छात्र प्रभावी-ढंग से अपनी-भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं।

परन्तु एक बात जरूर है कि छात्रों को देश की आज की अपेक्षाओं पर और अधिक खरा उतरना है। कल के मुकाबले आज की चुनौतियाँ विकट हैं। परदे के पीछे की षड्यंत्रकारी नीतियाँ प्रकट में चलने वाली समाज विरोधी गतिविधियों से अधिक खतरनाक है। एक तरफ देश के बाहर के तत्व नये-नये तरीकों और संसाधनों के द्वारा देश पर घातक हमले और षड्यंत्र चला रहे हैं तो देश के भीतर समाज अहितकारी प्रयास चल रहे हैं। पाकिस्तान, बांग्लादेश, चीन, अमेरिका जैसे देश भारत विरोधी अभियानों में लगे हैं। नेपाल, श्रीलंका की स्थितियां भारत के प्रतिकूल ही कही जा सकती हैं। ऑस्ट्रेलिया में भारत विरोधी रुख भारतीय छात्रों पर होने वाले हमलों के रुप में सामने आ रहे हैं। दुनिया के देश-भारत की बढ़ती

छोटे-बड़े स्थानीय और राष्ट्रीय मुद्दों पर परिषद् ने लगातार संघर्ष किया है। 1990 में 10 हजार छात्र-छात्राओं का कश्मीर मार्च, 2002 में शिक्षा और रोजगार विषय पर दिल्ली में 75000 छात्र-छात्राओं का मोर्चा और 2008 में बांग्लादेशी घुसपैठ के विरोध में 40000 छात्र-छात्राओं का चिकननेक (किशनगंज) आंदोलन यह बताने के लिए सम्भवतः पर्याप्त है कि भारत में छात्र आंदोलन अभी जीवित ही नहीं अपितु छात्र प्रभावी-ढंग से अपनी-भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं।

शक्ति को जानकर ही उसे कैसे कम किया जाय इस अभियान में जुटे हैं। देश में वोट-बैंक की खातिर मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति अपनी पराकाष्ठा पर है। आतंकी भारत में कोई भी घटना घटित करने के बाद भी तुष्टीकरण के कारण सुरक्षित हो जाते हैं और उनके आश्रयदाताओं पर तो कोई खौफ है ही नहीं। ऐसा महसूस होता हैं कि एक तरफ अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति की छात्रवृत्तियां वर्षों से बढ़ी नहीं है। जबकि मुस्लिम छात्रों को स्कूल कॉलेज में प्रवेश दिन से ही हजारों की छात्रवृत्तियां सुनिश्चित की जा रही हैं। सच्चर समिति एवं रंगनाथ मिश्र आयोग की सिफारिशें इतनी गहरी विभेदकारी हैं कि लोगों को लगता है कि क्या वर्तमान शासनकर्ता देश को एक और विभाजन की ओर धकेलने की योजनायें बना रहे हैं। एक ओर बांग्लादेशी घुसपैठियों को बाहर निकालने की कारगर नीति बनाने की राजनीतिक इच्छाशक्ति का अभाव-दिखाई देता है तो दूसरी ओर विवादित UID कार्ड बनाने की नीतियां लागू हो रही हैं। देश में समाज की अन्तर्निहित शक्ति के कारण वैश्विक मंदी के दौर का भी असर भारत पर कम दिखाई देता हैं परन्तु यहां की सरकारी आर्थिक नीतियों की गलत दिशाओं के कारण मंहगाई और बेरोजगारी लगातार बढ़ रही हैं। पिछले करीब डेढ़ दशक की नीतियों ने शिक्षा को माफियाओं के हवाले कर दिया है। शिक्षा देश में सड़कों पर बिकने वाली वस्तु बन गई है। विदेशी-संस्थानों के लिए भारत में शिक्षा व्यापार करने का बिल, राष्ट्रीय उच्च शिक्षा और शोध आयोग बिल, मेडीकल और तकनीकी शिक्षा में अनैतिक तरीकों के रोक आदि के बारे में प्रस्तावित 6 प्रकार के बिल शिक्षा के आज के प्रश्नों को हल करने के स्थान पर केवल आंखों में धूल झोंकने के प्रयास अधिक लगते है। परिसरों में छात्र और खेतों में किसान इन नीतियों के कारण अवसाद में आकर-आत्महत्यायें करने पर मजबूर हो रहे हैं।

शिक्षा देश में सड़कों पर बिकने वाली वस्तु बन गई है। विदेशी-संस्थानों के लिए भारत में शिक्षा व्यापार करने का बिल, राष्ट्रीय उच्च शिक्षा और शोध आयोग बिल, मेडीकल और तकनीकी शिक्षा में अनैतिक तरीकों के रोक आदि के बारे में प्रस्तावित 6 प्रकार के बिल शिक्षा के आज के प्रश्नों को हल करने के स्थान पर केवल आंखों में धूल झोंकने के प्रयास अधिक लगते है। परिसरों में छात्र और खेतों में किसान इन नीतियों के कारण अवसाद में आकर-आत्महत्यायें करने पर मजबूर हो रहे हैं।

कम्युनिस्ट हाशिए पर आने के बावजूद अनैतिक गठबंधनों के आधार पर राजनीति को प्रभावित करने की कोशिश में हैं तो कांग्रेस युवा नेतृत्व के नाम पर वंशवाद को बेशर्मी से पल्लवित पोषित करने पर उतारु है। नक्सली हिंसा पर देश के अधिकांश राजनीतिक लोग गैर-जिम्मेदाराना रवैया अपनाये हुए हैं।

पर्यावरण का संकट बढ़ता जा रहा है। पृथ्वी के बढ़ते तापमान और जल संकट के प्रश्न समाज को आतंकित किये हुए हैं। ऐसे में स्वाभाविक रूप से आज के नौजवानों की ओर लोगों का ध्यान जाता है कि उनके माध्यम से समस्याओं का समाधान खोजा जाय। इस दृष्टि से युवाओं की सक्रियता आज और अधिक प्रासांगिक हो जाती है।

इसमें कोई दो राय नहीं कि सत्तर के दशक का प्रसिद्ध जे.पी. आन्दोलन गुजरात के छात्रावास के मेस के बिलों की धांधली के विरोध के रूप में प्रारम्भ होकर गुजरात से देशव्यापी बना और जे.पी. ने उसे नेतृत्व दिया। यह एक प्रभावी परिणाम देने वाला ऐतिहासिक आंदोलन था। परन्तु आज की परिस्थिति में समस्याओं के स्वरूप में परिवर्तन हुए हैं तो उनसे लड़ने के तरीकों में भी कुछ बदलाव जरूर होने हैं। राजनीति में संवादहीनता और संवेदनशीलता में काफी गिरावट आयी है। लोगों के नैतिक मूल्यों में कमी ने स्थिति को और अधिक जटिल बनाया हैं। परिसरों के स्वरूप में बुनियादी परिवर्तन हो गये हैं। चारों ओर कैरियरिज्म का बोलबाला हैं। इस कारण परिसरों के वातावरण ही चुनौतीपूर्ण हो गये हैं। इस सब के बावजूद छात्र अपनी भूमिका का निर्वहन कर तो रहे हैं। परन्तु इसकी गति और प्रमाण की आवश्यकता बंधी हुई चुनौतियों और उनके स्वरूप के अनुपात में ही बढ़ानी पड़ेगी। यह भी स्पष्ट है कि भारत का भवितव्य सन्निकट है परन्तु परिस्थितियों की जटिलतायें युवाओं से उनकी सात्विक शक्तियों के जबरदस्त आवेग की अपेक्षा करती हैं। लोगों को लगना भी चाहिए कि भारत का युवा वर्ग अपने कर्तव्य के निर्वहन के लिए आज भी जागरूक है विशेष कर छात्र देश की समस्या के समाधान के लिए तत्पर है।

(लेखक अ.भा.वि.प. के पूर्व राष्ट्रीय अध्यक्ष हैं)

समाज परिवर्तन छात्र आन्दोलन की पहचान

■ अतुल कोठारी

देश के इतिहास पर दृष्टिक्षेप करने से ध्यान में आता है जो भी महत्त्वपूर्ण आन्दोलन हुए, चाहे वह सामाजिक हो, आध्यात्मिक हो या राजनैतिक हो, सभी में छात्र, युवाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। आइये पीछे मुड़कर अतीत की ओर देखते है। चाणक्य ने भ्रष्ट शासक नन्द के विरूद्ध संघर्ष छेड़ा था। उसमें बड़ी मात्रा में प्रत्यक्ष रूप से छात्रों की सहभागिता रही थी। आधुनिक काल में स्वामी विवेकानन्द ने सभग्र विश्व में हिन्दू धर्म, संस्कृति को पुनः स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। विवेकानन्द स्वयं युवा थे और उनके साथ इस आन्दोलन में भगिनी निवेदिता जैसी विदेशी युवती से लेकर देश के छात्र, युवक अधिक मात्रा में सम्मिलित हुए जिसमें से बड़ी मात्रा में संन्यासी भी बने।

स्वतंत्रता के आन्दोलन में गांधी जी के साथ अहिंसा के रास्ते पर चलने वाले हो या क्रान्ति के रास्ते पर चलने वाले भगत सिंह, चन्द्रशेखर, मदनलाल धींगरा जैसे हजारों युवकों ने अपने जीवन के बलिदान दिये। सुभाषचन्द्र बोस ने 'आजाद हिन्द फौज' की स्थापना करके युवकों को आह्वान किया कि 'तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूंगा।' देश की आजादी के लिए खून देने हेतु हजारों युवक आजाद हिन्द फौज में सम्मिलित हुए। एक प्रकार से आजाद हिन्द फौज युवकों की ही संस्था थी। डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार ने 1925 में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना की तब उनसे जुड़े अधिकांश छात्र थे और डॉ. साहब की प्रेरणा से सैकड़ों छात्रों ने अपना समग्र जीवन राष्ट्र कार्य में लगा दिया, आज भी लगा रहे है। इसी प्रकार स्वतंत्र भारत में 1974 में चला नवनिर्माण आन्दोलन एवं 1975 में देश में तानाशाही स्थापित करने के विरूद्ध छात्रों, युवकों ने व्यापक जन आन्दोलन चलाया। बाद में उसका नेतृत्व जयप्रकाश नारायण ने किया जिससे उसकी पहचान जे.पी. आन्दोलन के नाम से बनी। इस आन्दोलन के कारण देश में तानाशाही स्थापित करने की इच्छा रखने वाले का पराभव हुआ और लोकतंत्र की विजय हुई। उपरोक्त सभी आन्दोलनों के प्रकार भिन्न-भिन्न होने के बावजूद सब में एक बात समान रूप से दिखती है कि व्यक्तिगत स्वार्थ से उपर उठकर राष्ट्र, समाज के लिए कुछ करने की संकल्पना थी इसके परिणामस्वरुप सभी आन्दोलनों का देश, समाज पर सकारात्मक परिणाम हुआ है।

सन् 1947 के बाद हमारे देश में लोकतांत्रिक व्यवस्था है। लोकतंत्र से तात्पर्य है कि लोगों का, लोगों के द्वारा, लोगों के लिए अर्थात् लोगो के हित हेतु तंत्र। लेकिन सत्ता का स्वभाव है वह स्वयं की सत्ता को टिकाए रखने हेतु तंत्र का दुरुपयोग करती है। ऐसा न हो इस हेतु लोक जागरण, लोक प्रबोधन एवं लोक संघर्ष यह लोकतंत्र को टिकाए रखने हेतु अनिवार्य है। एक प्रकार से आन्दोलन यह लोकतंत्र की आत्मा है। जहां भी लोकतंत्र है वहां लोगों में आन्दोलनपरता नहीं होगी तो वहां लोकतंत्र तानाशाही में परिवर्तित हो जाएगा।

वर्तमान में अपने देश में आन्दोलन के सन्दर्भ में अनेक लोगों के मन में गलत धारणा बनी है। आन्दोलन यानी मात्र धरना, प्रदर्शन, रैली यही है। वास्तव में जिस प्रयास के द्वारा लोगों के मन को आन्दोलित किया जा सके वह सब आन्दोलन है।

आपातकाल में कई समाचार माध्यमों ने अपनी कलम से लोगों को आन्दोलित किया था। स्वामी विवेकानन्द ने अपनी वाणी से लोगों को आन्दोलित किया था। डॉ. हेडगेवार ने अपने जीवन व्यवहार से लोगों को प्रेरित किया। एक पत्रक तैयार करके हजारों, लाखों लोगों तक पहुँचाना यह भी आन्दोलन है। आन्दोलन का दूसरा पहलू यह भी है कि मात्र व्यक्ति स्वार्थ या समूह के स्वार्थ का विचार नहीं। जिस में व्यापक समाज, राष्ट्र के हित की बात भी हो। इस प्रकार का आन्दोलन करने का सबसे अधिक सामर्थ्य स्वाभाविक छात्रों/युवकों में होता है। जिसके अपने स्वार्थ बहुत कम होते हैं। इस हेतु आन्दोलन की प्रेरणा हमेशा छात्र युवक ही रहे हैं। यह समग्र विश्व के विभिन्न आन्दोलनों के अनुभवों से ध्यान में आता है। 1960 में इण्डोनेशिया के तानाशाह शासक सुकर्णो के विरूद्ध सफल आन्दोलन नब्बे के दशक में पुनः उसी देश में भ्रष्ट शासक सुहार्तो को छात्र आन्दोलन के कारण सत्ता छोड़नी पड़ी। 1968 का फ्रांस का शैक्षिक आन्दोलन जैसे अनेक उदाहरण

देखने को मिलते है। इसलिए छात्र आन्दोलन की प्रासंगिकता अतीत में थी, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगी, यह शाश्वत सत्य है।

पिछले कुछ वर्षों से छात्र आन्दोलन की ओर देखने का समाज विशेष करके शासन-प्रशासन का नजरिया अधिक नकारात्मक हुआ है, यह दुर्भाग्यपूर्ण है। उनकी सोच से छात्र आन्दोलन अर्थात् तोड़फोड़, मारपीट, अनुशासनहीनता आदि। अगर कुछ मात्रा में यह वास्तविकता भी है तो उसके कारण में जाने की आवश्यकता है। छात्रों के आन्दोलन जब भी गलत रास्ते पर गये तब उसके पीछे शासन, राजनेता या शैक्षिक परिसरों के प्रशासकों के द्वारा छात्रों का अपनी राजनैतिक रोटियां सेकने हेतु दुरुपयोग, यही कारण अधिकतर ध्यान में आते है। दूसरा कटु सत्य यह भी है कि कई बार शांतिपूर्ण आन्दोलन करने वालो के योग्य प्रश्नों का समाधान प्राप्त नहीं होता जबकि अशांत रास्ते अपनाने वालों की गलत मांगें भी मानी जाती है। इसके पीछे कौन जिम्मेदार है? छात्र या शासन-प्रशासन। छात्र आन्दोलन की योग्य दिशा रहे, यह सबका दायित्व है न कि मात्र छात्रों का। दूसरी ओर देखते है तो देश में शिक्षक संगठनों, मजदूर संगठनों/यूनियनों, कर्मचारी संगठनों आदि को सरकार द्वारा वैधानिक मान्यता है लेकिन छात्र संगठनों को इस प्रकार की मान्यता नहीं है। अमेरिका सहित विश्व के अनेक लोकतांत्रिक देशों में छात्र संगठनों को वैधानिक मान्यता प्राप्त है फिर भारत में क्यों नहीं? वास्तव में यह देश की छात्रशक्ति के साथ अन्याय एवं उनका अपमान है। इस सन्दर्भ में देश के छात्र संगठनों को संयुक्त रूप से सोचने की आवश्यकता महसूस हो रही है।

वर्तमान में देश में छात्र आन्दोलन का परिदृश्य संतोषजनक नहीं दिख रहा है। इसके कारण में जाकर देखने का प्रयास करते है तब कुछ बातें ध्यान में आती है। जब से वैश्वीकरण, उदारीकरण, निजीकरण की हवा चली है तबसे सभी क्षेत्रों में विशेष करके अर्थ के क्षेत्र में भयानक स्पर्धा का वातावरण बना है। इसका शिकार छात्र भी बना है। छात्र भी अपने भविष्य के प्रति अति संवेदनशील हुआ है एवं अधिक से अधिक अर्थ प्राप्त करने के प्रयास में लगा है। दूसरा समाज के सभी क्षेत्रों में राजनीति का प्रभाव बढ़ रहा है। जिससे छात्र भी राजनीति की ओर अधिक आकर्षित हो रहा है।

1980 में असम में बंगलादेशी घुसपैठ के विरुद्ध चला आन्दोलन इसका महत्त्वपूर्ण उदाहरण है। अधिकतर छात्र संगठन भी राजनैतिक पक्षों की कठपुतली बनकर रह गये है। जिससे आम छात्रों का छात्र संगठनों पर से विश्वास उठता जा रहा है। राजनीतिक पक्ष भी छात्र संगठनों को अपना पिछलग्गू बनाये रखना चाहते हैं। उपरोक्त कारणों से जुझारू, संघर्षशील छात्र-युवा नेतृत्व का आज देश में अभाव दिखाई दे रहा है।

इन सारी परिस्थितियों के कारण कई लोगों का मानना है कि छात्र आन्दोलन मृतप्राय हो गया, अब छात्र आन्दोलन खड़ा नहीं हो सकता। यह सब नकारात्मक सोच है। मेरा मानना है कि इन सारी परिस्थितियों के बावजूद भी छात्र आन्दोलित हो सकता है। समय-समय पर छोटे-मोटे स्वरुप में उसका प्रकटीकरण आज भी दिखाई देता है।

उदाहरण आन्ध्र प्रदेश में चल रहा अलग तेलंगाना राज्य की मांग को लेकर छात्रों की सक्रिय भूमिका। लेकिन आज आवश्यकता है निर्णायक आन्दोलन एवं संघर्ष की। दूसरी बात आज परिदृश्य काफी बदला हुआ है जिसको अंग्रेजी में 'पैराडाइम शिफ्ट' कहते है। आज मात्र रास्ते पर आन्दोलन करने से परिणाम प्राप्त होगा, यह मुश्किल लगता है। छात्रों का बड़ा समूह आज भी राष्ट्रवादी है लेकिन परिस्थिति, मानसिकता के कारण वह रास्ते पर उतरना नहीं चाहता परन्तु अन्य प्रकार से प्रत्यक्ष या परोक्ष आन्दोलन से जुड़ना चाहता है। जैसे कुछ छात्र नेट पर वैचारिक आन्दोलन चला रहे है। इन्टरनेट जैसा माध्यम है जिससे वैश्विक स्तर पर आन्दोलन चलाया जा सकता है। आज न्यायालयों की भूमिका भी अत्याधिक बढ़ी हुई दिखाई दे रही है। देश की संसद, विधानसभा उनकी विभिन्न समितियां जैसी लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं का उपयोग भी सहायक हो सकता है। इस प्रकार के सारे प्रयोगों के कारण शिक्षा बचाओ आन्दोलन के द्वारा बड़ी मात्रा में निर्णायक सफलता प्राप्त हुई है। उपरोक्त सारे प्रयासों का अर्थ यह कदापि नहीं है कि धरना, प्रदर्शन, रैली आदि प्रकार के आन्दोलन की आज आवश्यकता नहीं है। यह तो अनिवार्य है लेकिन साथ में निर्णायक आन्दोलन हेतु अन्य रास्तों का भी प्रयोग आवश्यक है। दूसरे शब्दों मे कहना है वर्तमान में संघर्षशील एवं बौद्धिक दोनों प्रकार के नेतृत्व की आवश्यकता है।

आज के वैश्वीकरण के युग में गरीब अधिक गरीब हो रहा है। बेरोजगारी बढ़ रही है, भ्रष्टाचार की एक अनिवार्य दूषण के रुप में स्वीकार्यता बढ़ रही है। उच्च, व्यवसायिक शिक्षा मात्र अमीरों के बालकों हेतु ही उपलब्ध होगी, ऐसा परिदृश्य दिखाई दे रहा है। इस प्रकार की परिस्थितियों में छात्र आन्दोलन की आवश्यकता और अधिक महसूस हो रही है। इस हेतु स्वामी विवेकानन्द ने युवकों को आह्वान किया है 'उत्तिष्ठत, जागृत, प्राप्य वरान्निबोधत!' उठो, जागो, और तब तक चलो जब तक तुम अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं करते।

(लेखक : राष्ट्रीय सहसंयोजक, शिक्षा बचाओ आन्दोलन समिति एवं सह-सचिव, शिक्षा संस्कृति उत्थान न्यास)

विद्यार्थी आन्दोलन में छात्रा सहभाग

■ गीता ताई गुंडे

विश्वभर में छात्र-छात्राओं की विशेषत: महाविद्यालय-विश्वविद्यालयों में पढ़ने वालों की एक विशेषता है शिक्षित युवक होने के नाते वे स्वयं विचार कर सकते हैं, इसलिए वे अच्छे आलोचक हैं, अन्याय का विरोध करने की क्षमता रखते है। स्वयं में परिवर्तन ला सकते है। उसकी इन क्षमताओं के कारण विश्व में छात्र आन्दोलन समय-समय पर होते रहे। इन छात्र आन्दोलनों में छात्राओं की सहभागिता भी रही, क्या है, उसकी उपयोगिता क्या और उसके जीवन में उसका कोई प्रभाव रहा, इसके बारे में इस लेख में मेरे अनुभव के साथ रखने का यह प्रयास है।

वस्तुत: छात्राओं के बारे में अलग सोच-विचार करने की आवश्यकता ही नहीं। छात्र-छात्रा दोनों के समान गुण हैं। युवक-शिक्षित-युवक होने के नाते आज महाविद्यालय-विश्वविद्यालय में छात्रा छात्रों के बराबरी से शिक्षा प्राप्त करती हैं। व्यवसाय-नौकरी भी करती हैं। लेकिन प्रमाण सभी जगह 50-50 प्रतिशत नहीं है। छात्र आन्दोलनों में छात्र संगठनों में भी उनकी सहभागिता है लेकिन बराबरी की नहीं। फिर भी उनकी उपस्थिति अवश्य है। उनकी उपस्थिति निर्देश करती है कि उसमें यह क्षमताएं हैं। समाज में महिलाओं की स्थिति अलग होने के कारण अलग विचार करने की आवश्यकता है। भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन में, सत्याग्रहों में, क्रांतिकारियों की गतिविधियों में आजाद हिन्द फौज में छात्राओं की अपनी भूमिका रही। उसके बाद में '74 के छात्र आन्दोलनों में तथा '75-'77 के आपात्काल के समय सत्याग्रह में भी छात्राएं सहभागी रहीं। जेलों में रहीं, सामाजिक कारणों से, विवाह 19-20 वर्ष की आयु में होने के कारण लम्बे समय तक कार्यरत रहना सम्भव न होने के कारण संगठनों के वरिष्ठ पदों पर रहना, तथा नेतृत्व में लम्बे समय रहना कठिन रहता है इसलिए शीर्ष नेतृत्व में उनकी अनुपस्थिति दिखती है। फिर भी सामाजिक परिवर्तन के साथ बदलाव आ रहे हैं। अभाविप में छात्रा सहभाग का शुरू से आग्रह रखने के कारण सभी प्रांतों में अभी छात्राओं का सहभाग है, कुछ प्रान्तों में नेतृत्व भी किया है। महिला महाविद्यालयों के प्रश्नों को लेकर सम्पूर्ण आन्दोलन केवल छात्राओं द्वारा चलाने के बिहार जैसे प्रान्तों से भी उदाहरण है।

राष्ट्रीय आन्दोलनों में कश्मीर का आन्दोलन, गुवाहाटी सत्याग्रह, शैक्षिक आन्दोलन, तथा राष्ट्रीय सुरक्षा के विषयों के प्रदर्शनों में सहभागी रही, इतना ही नहीं ये अग्रणी भी रही। लाठी खायीं और जेलों में भी गईं, रास्ता रोको कार्यक्रम, नुक्कड़ सभा आदि कार्यक्रमों में भी सभी प्रांतों में छात्राएं सहभागी रहती हैं।

छात्रा विषय को लेकर छात्राओं ने पुलिस स्टेशन के घेराव किया था चर्चा के लिए पुलिस ने छात्र कार्यकर्ताओं को बुलाया था लेकिन उन्होंने कहा चर्चा छात्राओं के साथ होगी पुलिस को यह मान्य नहीं था। अंतत: उनको छात्राओं से ही चर्चा करनी पड़ी। छात्राओं के बारे में समाज में परिवर्तन लाने के लिए ऐसी घटनाओं का अपना प्रभाव है।

छात्राओं की समस्याओं को लेकर जैसे महाविद्यालय परिसर में बलात्कार की घटना, प्राध्यापकों द्वारा छेड़छाड़ की घटना -देशभर में जगह-जगह पर

सामाजिक आन्दोलन के साथ वैचारिक आन्दोलन के विषय पर समाज की मानसिकता में बदलाव लाने हेतु छात्राएं सभी प्रकार के संगठन-कार्य कर सकती है, निर्णय क्षमता रख सकती है, इस पर समाज का विश्वास निर्माण करके, भारतीय दृष्टिकोण से महिला का समाज में सम्मान का स्थान निर्माण करने का विचार प्रभावी करने में विद्यार्थी परिषद् की छात्राओं ने अपनी कृति से अपनी अहम् भूमिका निभाई है।

आवश्यकतानुसार छात्र-छात्राओं के आंदोलन हुए।

सामाजिक आन्दोलन के साथ वैचारिक आन्दोलन के विषय पर समाज की मानसिकता में बदलाव लाने हेतु छात्राएं सभी प्रकार के संगठन-कार्य कर सकती है, निर्णय क्षमता रख सकती है, इस पर समाज का विश्वास निर्माण करके, भारतीय दृष्टिकोण से महिला का समाज में सम्मान का स्थान निर्माण करने का-विचार प्रभावी करने में विद्यार्थी परिषद् की छात्राओं ने अपनी कृति से अपनी अहम् भूमिका निभाई है।

भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन में, सत्याग्रहों में, क्रांतिकारियों की गतिविधियों में आजाद हिन्द फौज में छात्राओं की अपनी भूमिका रही। उसके बाद में '74 के छात्र आन्दोलनों में तथा '75-'77 के आपात्काल के समय सत्याग्रह में भी छात्राएं सहभागी रहीं।

विद्यार्थी परिषद् से महिला सम्बंधित भारतीय विचार की प्रेरणा लेकर विश्व मंच पर भी अपना दृष्टिकोण रखने का प्रयास कार्यकर्ताओं ने अपने व्यवसायी जीवन में किया है। एक कार्यकर्ता को अमेरिका से विशेष Fellowship भी प्राप्त हुई थी।

किसी भी छात्र आन्दोलन से, संगठन से युवक एक आदर्शवाद ले लेकर जीवन भर उसी राह चलने की जीवन दृष्टि प्राप्त करता है।

विद्यार्थी परिषद् से जीवन दृष्टि लेकर अनेक छात्रा कार्यकर्ता अपने जीवन में कार्यरत है।

मुम्बई -महाराष्ट्र की पूर्व छात्रा कार्यकर्ताओं ने मिलकर महिला समस्याओं को लेकर भारतीय भूमिका को प्रस्थापित करने के लिए अन्य अनेक महिलाओं को जोड़कर संगठन खड़ा किया।

कर्नाटक में भी स्वतंत्र रूप से महिलाओं के लिए कार्य करने वाली, महिलाओं के लिए अर्थार्जन के लिए विशेष प्रकल्प चलाने वाली पूर्व कार्यकर्ता प्रभावी कार्य कर रही है।

पूर्व छात्रा कार्यकर्ता केवल महिलाओं के लिए ही काम करती है ऐसा नहीं, कर्नाटक में ही एक कार्यकर्ता ने ग्रामीण क्षेत्र के बच्चों को लेकर काम शुरू किया ताकि अपाहिज बच्चों का भी विकास हो। सम्मानित जीवन जी सके इसलिए नये तरीके से कार्य खड़ा किया जो अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार किया गया। मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश में भी कुछ कार्यकर्ता अपाहिजों के लिए महिला उद्योग के प्रकल्प चलाती हैं।

कुछ छात्रा कार्यकर्ता अपना पूरा जीवन ही पति के साथ जनजाति क्षेत्र में ग्रामीण विकास के कार्य कर रही हैं।

ऐसे अनेक उदाहरण दिए जा सकते है लेकिन यह उदाहरण देने का कारण है कि इन सभी को छात्र संगठन में रहने से यह प्रेरणा मिली है। ऐसे कई कार्यकर्ता अपने अपने क्षेत्र में नौकरी, व्यवसाय में भी इसी मनोभाव से, दृष्टि लेकर अपना प्रभाव क्षेत्र निर्माण करते हैं।

समाज में किसी भी विचार/दर्शन का प्रभाव छात्र जीवन में सबसे अधिक होता हैं। छात्र आन्दोलन की प्रासंगिकता इसलिए हमेशा ही रहेगी। शायद उसका दृश्य स्वरूप, काम करने के शैली में अंतर आ सकता है। उनके आग्रह के मुद्दे बदल सकते हैं, लेकिन छात्र आन्दोलन का अपना स्थान रहेगा ही और छात्र-छात्रा अपनी भूमिका जो समाज में एक प्रहरी की है, निभाते ही रहेंगे ऐसा विश्वास है। और छात्र आन्दोलन से उभरा हुआ नेतृत्व जीवन में अन्याय का विरोध करना, तथा आपत्तियों में सक्रिय होना यह उसका स्वभाव है। हर क्षेत्र में आगे जाकर नेतृत्व देगा। जब तक समाज में अन्याय है, दु:ख है, नैसर्गिक, मानवनिर्मित आपत्तियां है, तब तक छात्र आन्दोलन की प्रासंगिकता रहेगी ही।

(लेखिका रा.स्व.संघ की महिला समन्वयक एवं अ.भा.वि.प. की पूर्व राष्ट्रीय उपाध्यक्ष हैं)

पूर्व छात्रा कार्यकर्ता केवल महिलाओं के लिए ही काम करती है ऐसा नहीं, कर्नाटक में ही एक कार्यकर्ता ने ग्रामीण क्षेत्र के बच्चों को लेकर काम शुरू किया ताकि अपाहिज बच्चों का भी विकास हो। सम्मानित जीवन जी सके इसलिए नये तरीके से कार्य खड़ा किया जो अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार किया गया। मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश में भी कुछ कार्यकर्ता अपाहिजों के लिए महिला उद्योग के प्रकल्प चलाती हैं।

छात्रों के लोकतांत्रिक अधिकारों की रक्षा हो...

■ सुनील आंबेकर

काफी दिनों बाद समय मिला, तो किसी मित्र के साथ ऑरकुट पर घूमने चला गया। काफी छात्र-छात्राओं की भीड़ थी। बिल्कुल वैसे जैसे कैम्पस भरा पड़ा हो और सभी अलग-अलग कई समूहों में मस्ती कर रहे हों। उत्साह से दोस्तों से मिलना व नये से परिचय व फिर दोस्तों में शामिल, ऐसा ही कुछ पूरे उत्साह के साथ चल रहा था। अपनी मर्जी से दुनिया भर के विषयों पर चर्चा करना, यह उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति का दर्शन वहां भी हो रहा था। फिल्म, फैशन से लेकर पर्यावरण, विकास, देश का स्वाभिमान, भ्रष्टाचार, राजनीति जैसे कई विषय सहजता एवं उत्साह से चर्चा करने हेतु कितने सारे कम्युनिटी ग्रुप्स और .... अर्थात् इन सभी सामाजिक सम्बंधों (सोशल नेटवर्किंग) वाले स्थलों (साईट्स) पर व्यक्त विचारों में एक खासियत स्वाभाविक रूप स झलकती है कि नौजवान लोग हमेशा की तरह सामान्य प्रचलन से हटकर बिल्कुल नई बातें सोचते हैं। नया कुछ कहने व करने का जज़्बा बिल्कुल साफ दिखता है।

ऐसा ही दृश्य दिसम्बर-जनवरी में होने वाले महाविद्यालय उत्सवों में दिखता है। खूब जमकर विविध प्रकार का कला प्रदर्शन बड़े ही रोचक ढंग से प्रस्तुत होता है। ऐसा लगता है कि नई पीढ़ी में कहां से ढूंढकर यह नई कल्पनाएं एवं प्रतिभाएं आई है? ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के मंदिरों के बाहर या त्योहारों व सार्वजनिक उत्सवों में नौजवानों की टोली पूरे उत्साह से भाग लेती हुई दिखती है। गणपति या दुर्गा उत्सव व सरस्वती पूजन सभी में छात्र बड़ी संख्या में भाग लेते हैं।

अंग्रेजी नववर्ष के स्वागत में 31 दिसम्बर की रात झूमने वाले युवक है तो भारतीय नववर्ष का स्वागत करने वाले छात्रों की भी कमी नहीं है।

यह सब क्यों लिखा? छात्रों की आकांक्षाओं और रूचि को ठीक से समझने में यह उपयोगी होगा, जिससे हम इस समुदाय के संदर्भ में सही आकलन कर पाये। छात्रों की एक समुदाय के नाते पहचान तथा उस छात्रशक्ति की दिशा एवं शक्ति समझना आज बहुत जरूरी है क्योंकि देश का भविष्य तय करने में यही समुदाय महत्वपूर्ण एवं निर्णायक भूमिका निभायेगा। हम भारत वर्ष के संदर्भ में अपने किसी सपने को साकार करना चाहते हैं, तो यह शक्ति ही उसका माध्यम बनेगी। कोई ठोस परिवर्तन चाहते हैं तो इसी समुदाय के पास यह शक्ति है, जो मन बनाते है तो, पूरी निष्ठा व समर्पण के साथ संगठित होकर उस कार्य को कर सकते हैं।

आज हम एक देश के नाते महाशक्ति बनना चाहते हैं। एक समृद्ध, सम्पन्न देश बनना हमारा सपना है। दुनिया भी हमारे देश को सर्वाधिक नौजवानों एवं बुद्धिमान लोगों का

बीते कुछ वर्षों में छात्र आन्दोलन की ताकत देखते हुए राजनैतिक दलों ने इसे अपने कब्जे में लेने का प्रयास किया है। दूसरी तरफ छात्र संघों को अधिकतर विश्वविद्यालयों में बंद किया है। छात्र संगठन को राजनैतिक या अराजक तथा अनावश्यक बताकर शैक्षिक परिसरों से बाहर करने की प्रवृत्ति बढ़ी है। निजी महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में यह प्रवृत्ति काफी प्रभावी है। छात्रसंघों के अभाव में तथा छात्र संगठन को नकारकर अपनी मनमानी करने की प्रवृत्ति शैक्षिक परिसरों के प्रशासन में हर स्तर पर बढ़ी है, जो काफी निंदनीय है।

देश मानकर, भविष्य में महाशक्ति की सम्भावना हममें देख रही है। लेकिन इस हेतु समूचे भारत का संकल्प जिसमें छात्र पूरे मन से दृढ़संकल्प लेकर नेतृत्व कर रहा हो, यह नितांत आवश्यक है।

बहुत सारी समस्याओं जिसमें कुछ काफी जटिल, पुरानी एवं नीचे तक फैली हैं, से भी निपटना होगा। इस हेतु कई मोर्चों पर संघर्ष भी करना होगा। हिम्मत के साथ लड़ते हुए सरकारों पर दबाव, भ्रष्टाचारियों एवं समाज हित के विरोधियों में भय उत्पन्न करने हेतु छात्रशक्ति को ही सामने आना होगा।

21वीं सदी में भारत के पुनरूत्थान में पुन: एक नया, प्रदीर्घ एवं व्यापक छात्र आन्दोलन, यह समय की मांग है। इस हेतु कुछ विश्लेषण जरूरी है। जैसे विश्व एवं विशेषकर भारत में छात्र आन्दोलन का इतिहास व वर्तमान समय में उसकी स्थिति, भविष्य की सम्भावनाएं आदि। वर्तमान स्थिति का विश्लेषण व उसे सुधारने हेतु उपाय तथा भविष्य की कल्पना जैसे विषयों पर छात्रों का प्रबोधन, उन्हें संगठित होने एवं संघर्ष करने का मौका प्रदान करना आदि बातें आग्रहपूर्वक करनी होगी।

जब महाविद्यालय परिसरों में उसके सुधार हेतु छोटी-छोटी बातों पर छात्र आंदोलित होते हैं, तो उन्हें वैसा करने का मौका मिलना चाहिए। उन बातों को सकारात्मक रूप से स्वागत योग्य कदम मानकर उनकी बातों पर गौर किया जाए। ऐसा माहौल बनने से छात्र समुदाय की हिम्मत एतं सोच बढ़ेगी व निश्चित रूप से देश के कई महत्वपूर्ण मुद्दों पर वह पहल करेंगे। आजादी के आन्दोलन में उनका सहभाग काफी सराहनीय रहा। स्वाधीनता के पश्चात् विद्यार्थी परिषद् जैसे संगठन ने ऐसा एक सकारात्मक छात्र आन्दोलन इस देश में खड़ा करने का प्रदीर्घ प्रयास किया है।

हमारे देश में तथा कुछ पड़ोसी देशों में भी लोकतंत्र पर हमले हुए। जहां भारत में विद्यार्थी परिषद् जैसे सशक्त छात्र संगठन की उपस्थिति के कारण व्यापक आन्दोलन खड़ा हो पाया व लोकतंत्र की रक्षा हुई, वहीं दूसरी तरफ कई देशों में छात्र आन्दोलन के अभाव में जनाक्रोश व्यक्त नहीं हो पाया व लोकतंत्र खतरे में पड़ गया है। आपात्काल के समय भारत में चला छात्र आन्दोलन ऐतिहासिक बन गया।

बीते कुछ वर्षों में छात्र आन्दोलन की ताकत देखते हुए राजनैतिक दलों ने इसे अपने कब्जे में लेने का प्रयास किया है। दूसरी तरफ छात्र संघों को अधिकतर विश्वविद्यालयों में बंद किया है। छात्र संगठन को राजनैतिक या अराजक तथा अनावश्यक बताकर शैक्षिक परिसरों से बाहर करने की प्रवृत्ति बढ़ी है। निजी महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में यह प्रवृत्ति काफी प्रभावी है। छात्रसंघों के अभाव में तथा छात्र संगठन को नकारकर अपनी मनमानी करने की प्रवृत्ति शैक्षिक परिसरों के प्रशासन में हर स्तर पर बढ़ी है, जो काफी निंदनीय है। छात्रों को भी यह समझाने का प्रयास लगातार चला है कि उन्हें केवल अपनी पढ़ाई अर्थात् कैरियर पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए एवं छात्र संगठनों की गतिविधियों से दूर रहना चाहिए। इन सभी बातों का भी छात्रों की प्रवृत्ति एवं परिसरों के माहौल पर विपरीत परिणाम हुआ है। राजनैतिक दलों के प्रभाव वाले सभी छात्र संगठन छात्र संघों के अभाव में निष्क्रिय हुए हैं। परन्तु विद्यार्थी परिषद् ने अपने परिश्रम से इन विपरीत परिस्थितियों में भी अपने संगठन का व्यापक विस्तार किया है तथा छात्रों की स्वाभाविक परिवर्तनकारी तथा आन्दोलनकारी प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया है। गत 60 वर्षों में लगातार आन्दोलन की शृंखला खड़ी करते हुए लाखों छात्रों को उसमें सहभागी किया है। कई रचनात्मक कार्यों का संचालन करते हुए छात्रों की रचनात्मक एवं सृजनात्मक प्रतिभा तथा पहल को बढ़ावा दिया है। इसलिए भारत में छात्र आन्दोलन

विद्यार्थी परिषद् ने अपने परिश्रम से इन विपरीत परिस्थितियों में भी अपने संगठन का व्यापक विस्तार किया है तथा छात्रों की स्वाभाविक परिवर्तनकारी तथा आन्दोलनकारी प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया है। गत 60 वर्षों में लगातार आन्दोलन की शृंखला खड़ी करते हुए लाखों छात्रों को उसमें सहभागी किया है। कई रचनात्मक कार्यों का संचालन करते हुए छात्रों की रचनात्मक एवं सृजनात्मक प्रतिभा तथा पहल को बढ़ावा दिया है। इसलिए भारत में छात्र आन्दोलन को जीवित एवं सक्षम रखने का महत्वपूर्ण कार्य परिषद् द्वारा हुआ है।

को जीवित एवं सक्षम रखने का महत्वपूर्ण कार्य परिषद् द्वारा हुआ है। आज जब भारत आगे बढ़ने के लिए तत्पर हुआ है, तो उसके पास एक सशक्त सकारात्मक अभाविप जैसा छात्र संगठन है, जो देश के लिए आवश्यक छात्र आन्दोलन की क्षमता रखता है।

समूचे देशवासी अब भारत को महाशक्ति के रूप में देखने का सपना देख रहे हैं। दुनिया भी हमें इस रूप में मान रही है। ब्रह्मोस जैसी मिसाइलों का उत्पादन, सेटेलाइट या सम्पर्क एवं सूचना क्षेत्र आदि में हुई लक्षणीय उपलब्धियां, आर्थिक दृष्टि से हो रही प्रगति जैसे कई क्षेत्र में अब हम आगे बढ़ रहे हैं। परन्तु ऊपर से नीचे निरंतर बढ़ता भ्रष्टाचार देश के विकास में बहुत बड़ी बाधा बन गया है। सत्ता के गलियारों में स्वार्थवश ऐसी नीतियां नजर आ रही है जो हर तौर देश के हित में नहीं है। सत्ता के स्वार्थवश आतंकी अफजल की फांसी को रोकने जैसी नीतियां सामान्य व्यक्ति को निराशा तथा भय की तरफ धकेल रही है। इतनी रक्षात्मक व्यवस्था होने पर भी ऐसी ढीली ढाली नीतियों का ही परिणाम है कि देशभर में लगातार आतंकी हमले होते हैं तथा नक्सली अपनी बेहद हिंसक गतिविधियों को अंजाम देते हैं।

शिक्षा क्षेत्र में निजी प्रबन्धनों से सांठगांठ के माध्यम से व्यापारीकरण चल रहा है, उसने खुली लूट मचा रखी है। आम लोगों की परेशानी बढ़ती जा रही है। वैश्वीकरण तथा खुलापन की हवा में आम लोगों को बाजारों के हवाले छोड़ दिया जा रहा है, जिसके चलते उन्हें महंगी शिक्षा एवं दवा, बेरोजगारी, मालिकों की मनमानी, महंगाई जैसे कई बातों से गुजरना पड़ रहा है।

जरूरत है सरकारों को मजबूत करने की कि वह ठोस एवं निर्णायक कार्रवाई करें। इस हेतु छात्रों को अपने आन्दोलन से सत्ता पर अंकुश लगाना जरूरी है। अल्पसंख्यक तुष्टीकरण करते हुए अंग्रेजों ने देश विभाजन को जन्म दिया लेकिन स्वाधीन भारत में फिर सच्चर कमेटी तथा रंगनाथ मिश्र आयोग के माध्यम से उन्हीं बातों को वर्तमान सरकार ने उछाला है व मुस्लिम मतों के दबाव में लगभग सभी राजनैतिक दल भी खुलकर कुछ नहीं बोल रहे हैं। कभी अल्पसंख्यकों को आरक्षण, अमुक की शाखाएं, सस्ते में बैंकों द्वारा कर्जा, अल्पसंख्यक बहुल जिले जैसी कई घोषणाएं एवं व्यवस्थाएं बनायी जा रही है। इन बातों को पूरी ताकत से छात्रशक्ति नहीं रोकेगी तो हमें फिर देशविभाजन एवं अराजकता जैसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ेगा।

शिक्षा क्षेत्र में निजी प्रबन्धनों से सांठगांठ के माध्यम से व्यापारीकरण चल रहा है, उसने खुली लूट मचा रखी है। आम लोगों की परेशानी बढ़ती जा रही है। वैश्वीकरण तथा खुलापन की हवा में आम लोगों को बाजारों के हवाले छोड़ दिया जा रहा है, जिसके चलते उन्हें महंगी शिक्षा एवं दवा, बेरोजगारी, मालिकों की मनमानी, महंगाई जैसे कई बातों से गुजरना पड़ रहा है।

देश की सुरक्षा, स्वाभिमान, विकास व पुनः उसे सम्मान दिलाना छात्रों का दायित्व है। राष्ट्र का पुनर्वैभव, यही उनके जीवन का लक्ष्य है तथा छात्र समुदाय को उसके लिए सक्रिय होना ही नियति है। आज छात्रों को ऐसी ताकत दिखानी होगी कि संसद हिल जाए, देश के लोग आशान्वित हो जाएं व सरकारें मजबूर हो जाएं। छात्रों के दबाव में सरकारें उनकी बात सुनें व उस पर अमल करें। ऐसे छात्र आन्दोलन की आज देश को आवश्यकता है। शायद परिसरों में ऐसे आन्दोलन की छात्र राह देख रहा है।

आओ देश के छात्रों! अपनी छात्रशक्ति का राष्ट्रशक्ति के स्वरूप में दर्शन कराएं, जो इस देश की महानतम बनने की आकांक्षा को पूरा करेगा व एक आम हिन्दुस्तानी की गरीबी व असहायता को समाप्त करते हुए सभी के लिए खुशहाली का नया उजाला लायेगा।

(लेखक अ.भा.वि.प. के राष्ट्रीय संगठन मंत्री हैं एवं उनसे ambekarsunil@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।)

छात्रों के सामने आदर्श प्रस्तुत करने की जरूरत

■ सुनील बंसल

यह सत्य है कि दुनिया भर में जितने भी परिवर्तन हुए हैं चाहे वह क्रान्ति हो या आन्दोलन, सब में युवा-छात्र का सहभाग अवश्य रहा है, साथ ही यह भी इतना सत्य है कि परिवर्तन के प्राथमिक कार्य के रूप में बीज बोने का काम भी समाज के इसी छात्र वर्ग ने किया है। इतिहास साक्षी है कि भक्त प्रहलाद से लेकर ध्रुव तक या युवा वनवासी श्रीराम से लेकर-श्रीकृष्ण तक समाज के सामने उत्पन्न संकटों का समाधान कर धर्म स्थापना का कार्य इसी वर्ग ने किया है। तक्षशिला के एक शिक्षक विष्णुगुप्त द्वारा विदेशी आक्रान्ताओं से मातृभूमि की रक्षा के लिए व मगध की भ्रष्ट शासक व्यवस्थाओं से मुक्ति के लिए चन्द्रगुप्त के नेतृत्व में छात्रों के माध्यम से नई व्यवस्था का निर्माण किया।

1857 के स्वाधीनता संघर्ष व 1905 के बंगभंग आन्दोलन व उसके बाद के कालखण्ड में स्वाधीनता की लड़ाई में छात्रों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है चाहे वह चापफेकर बन्धु हो या मदनलाल धींगड़ा, उधम सिंह हो या भगत सिंह या पिफर चन्द्रशेखर आजाद हों या सुभाषचन्द्र बोस हों, यह सभी छात्र ही थे। 1921 में भी महात्मा गांधी ने छात्रों से आह्वान किया था स्वराज पहले शिक्षा बाद में। दुनिया भर में चले छात्र आन्दोलनों व उनकी सपफलता व उसमें छात्रों की भूमिका के कारण से छात्रशक्ति यह राष्ट्रशक्ति है, यह स्वयं सि(है।

विद्यार्थी समुदाय एक अलग प्रकार का सामाजिक वर्ग है, जो कैम्पस में संगठित रहकर समूह में सहज एकत्रा होता है। इसमें परिवर्तन की आवश्यक कीमत देने की उसकी मानसिकता हमेशा रहती है। वह मात्रा सत्ता नहीं व्यवस्था परिवर्तन का आग्रही है, इसी कारण सामाजिक व राष्ट्रीय स्थिति पर प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। आदर्श सामने होने पर कुछ भी कर गुजरने को तत्पर रहता है।

विद्यार्थी परिषद् ने भी छात्रों की इस भूमिका व मानसिकता को समझते हुये व्यक्ति परिवर्तन के माध्यम से व्यवस्था परिवर्तन हेतु जन आन्दोलनों के माध्यम से समाज परिवर्तन यानि राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का लक्ष्य रखकर 60 वर्ष पूर्व कार्य प्रारम्भ किया। परिषद् ने इन 60 वर्षों में शिक्षा में परिवर्तन व निर्णयों में छात्रों का सहभाग हो, आपातकाल का विरोध व लोकतंत्रा की रक्षा हेतु, असम में बांग्लादेशी घुसपैठ, नक्सली हिंसा, कश्मीर में आतंकवाद, शिक्षा और रोजगार, परिसर बचाओ अभियान, भ्रष्टाचार व राजनीति का अपराधीकरण जैसे मुद्दों पर प्रभावी छात्रा आन्दोलन कर छात्रा की जिम्मेदार नागरिक की भूमिका का निर्वहन किया है। हमने देश में गलत बातों का विरोध करते हुये एक अंकुश का काम किया है। एक सजग प्रहरी के रूप में हम आज खड़े है और बढ़ भी रहे है।

देश व समाज के सामने आ रहे संकट, चाहे वह राष्ट्र की सुरक्षा का हो या आतंकवाद का, बांग्लादेशी घुसपैठ हो या पिफर अल्पसंख्यक तुष्टीकरण, शिक्षा का बाजारीकरण हो या छात्रों को परिसरों में नेतृत्व प्रदान करते हुये आन्दोलनों की आवश्यकता हो या सत्ता पर जनता के हित में कार्य करने के लिए अंकुश का काम करना हो या रचनात्मक कार्यों के माध्यम से देश के उत्थान में योगदान, चाहे सामाजिक कुप्रथाओं का विरोध व नई परम्पराओं का विकास करते हुये व्यापक छात्रा आन्दोलन की आवश्यकता हो, आज भी युवाओं की ओर उनकी भूमिकाओं की प्रासंगिकता दिखाई दे रही है।

सरकार छात्रा संघों पर रोक लगाती है जिससे उनकी सत्ता को चुनौती कोई ना दे सकें। छात्राओं पर परिवार में दबाव बनाया जाता है इसलिए छात्रा भी कोचिंग-ट्यूशन के माध्यम से कैरियरियज्म की दौड़ में भागता दिखाई देता है। छात्रों के सामने आदर्श के अभाव में सत्ता व राजनेताओं के प्रति निराशा का भाव दिखाई देता है। छात्रा आन्दोलनों के लिए यह सब चुनौतियां होने के बावजूद भी अभाविप ने छात्रों के सामने हमेशा आदर्श रखा है, उसे प्रेरित किया है। लेकिन अन्य छात्रा संगठन व छात्रासंघों की सक्रियता मात्रा राजनीति प्रेरित दिखाई देती है।

एक तरफ छात्रा आन्दोलनों के वर्तमान स्वरूप को देखकर समाज में एक वर्ग छात्रासंघ, संगठन एवं आन्दोलनों की आवश्यकता पर प्रश्न खड़ा करता रहता है। लोकतन्त्रा में आन्दोलन की क्या आवश्यकता है ? सड़क पर संघर्ष क्यों ? कानून है, अदालतें हैं, इस प्रकार के कुतर्क दिये जाते है। वही दूसरी तरफ शिक्षा के निजीकरण के कारण महाविद्यालयों में छात्रों के आन्दोलन पर पाबन्दी लगाई जाती है ताकि वहां छात्रा का शोषण आसानी से किया जा सके, सरकार छात्रा संघों पर रोक लगाती है जिससे उनकी सत्ता को चुनौती कोई ना दे सकें। छात्रों पर परिवार में दबाव बनाया जाता है इसलिए छात्रा भी कोचिंग-ट्यूशन के माध्यम से कैरियरियज्म की दौड़ में भागता दिखाई देता है। छात्रों के सामने आदर्श के अभाव में सत्ता व राजनेताओं के प्रति निराशा का भाव दिखाई देता है। छात्रा आन्दोलनों के लिए यह सब चुनौतियां होने के बावजूद भी अभाविप ने छात्रों के सामने हमेशा आदर्श रखा है, उसे प्रेरित किया है। लेकिन अन्य छात्रा संगठन व छात्रासंघों की सक्रियता मात्रा राजनीति प्रेरित दिखाई देती है।

छात्रा आन्दोलनों के सामने विभिन्न चुनौतियां होने के बावजूद भी आज कुछ संभावनायें छात्रा समुदाय में दिखाई देती है। छात्रा का मूल स्वभाव प्रतिक्रिया देने का है, वह आज भी उसमें जीवित है, गलत बात का विरोध करता है, प्रश्न पूछता है, रिस्क लेने का उसका मन है, सहजता से एकत्रा आता है। व्यवस्था परिवर्तन का जज्बा है। हो सकता है उसके स्वरूप में बदलाव आया हो, प्रकार बदल गये हो परन्तु छात्रा की मानसिकता आज भी परिवर्तन के लिए संघर्ष करने की दिखाई देती है। छात्रों का सामाजिक कार्यों में एन.जी.ओ. के साथ जुड़ना, पर्यावरण रक्षा पर पहल करना, देश के विकास के लिए नई-नई योजनाओं पर कार्य करना, इसके सकारात्मक संदेश है।

वर्तमान में छात्रा आन्दोलनों की स्थिति, छात्रा की मानसिकता देखकर पुनः देश में एक व्यापक छात्रा आन्दोलन की आवश्यकता व प्रासंगिकता आज समाज महसूस कर रहा है। समाज छात्रा-युवाओं की ओर आशा से देख रहा है कि वही समाधान दे सकता है उस पर समाज में विश्वास बढ़ रहा है इसी कारण समाज में व्यापक युवा नेतृत्व की चर्चा हो रही है।

देश व समाज के सामने आ रहे संकट, चाहे वह राष्ट्र की सुरक्षा का हो या आतंकवाद का, बांग्लादेशी घुसपैठ हो या फिर अल्पसंख्यक तुष्टीकरण, शिक्षा का बाजारीकरण हो या छात्रों को परिसरों में नेतृत्व प्रदान करते हुये आन्दोलनों की आवश्यकता हो या सत्ता पर जनता के हित में कार्य करने के लिए अंकुश का काम करना हो या रचनात्मक कार्यों के माध्यम से देश के उत्थान में योगदान, चाहे सामाजिक कुप्रथाओं का विरोध व नई परम्पराओं का विकास करते हुये व्यापक छात्रा आन्दोलन की आवश्यकता हो, आज भी युवाओं की ओर उनकी भूमिकाओं की प्रासंगिकता दिखाई दे रही है।

विद्यार्थी समुदाय एक अलग प्रकार का सामाजिक वर्ग है, जो कैम्पस में संगठित रहकर समूह में सहज एकत्रा होता है। इसमें परिवर्तन की आवश्यक कीमत देने की उसकी मानसिकता हमेशा रहती है। वह मात्रा सत्ता नहीं व्यवस्था परिवर्तन का आग्रही है, इसी कारण सामाजिक व राष्ट्रीय स्थिति पर प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। आदर्श सामने होने पर कुछ भी कर गुजरने को तत्पर रहता है।

(लेखक अ.भा.वि.प. के राष्ट्रीय सह संगठन मंत्री हैं)

छात्र आन्दोलन और उसकी प्रासंगिकता

■ डा. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री

पिछले कुछ अरसे से छात्र आन्दोलन और उसकी प्रासंगिकता को लेकर प्रश्न उठने शुरू हुये हैं। ऐसा कहा जाने लगा है कि आज जब वैश्वीकरण की दौड़ में हम जा रहे हैं, दुनिया के अरबपतियों में भी भारत के धनाढ्य लोगों की संख्या बढ़ती जा रही है, दुनिया की जानी मानी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से टक्कर लेती हुई भारतीय कम्पनियां भी उन्हीं की श्रेणी में शामिल हो रही हैं, यहां तक की विश्व सुन्दरियों में भी भारत अन्य देशों की सुन्दरियों को पछाड़ रहा है, यानि कि कुल मिला कर हम बहुत तेजी से आगे बढ़ रहे हैं। प्रगति के पथ पर अग्रसर देश को छात्र आन्दोलनों के कुचक्र में उलझाना उसकी विकास गति को धीमा करने का षड्यंत्र ही कहा जायेगा। छात्रों के पास इतना समय ही कहां है कि वे अपनी पढ़ाई लिखाई को छोड़ कर अन्य बातों की ओर ध्यान दे? पढ़ाई लिखाई भी वह नहीं जो इस देश का युवा आज तक करता आया है। अध्ययन की यह अवधारणा आउटडेटेड हो चुकी है। अब तो छात्रों को विज्ञान और तकनीक का व्यावहारिक पक्ष जानना होगा।

आयुर्विज्ञान, विज्ञान, अभियांत्रिकी मौलिक सूत्र पढ़ने और आगे बढ़ने का नुस्खा है। इन चीजों का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करना और उसके आधार पर प्रशिक्षण प्राप्त करना। प्रशिक्षण की विद्या ही अर्थकारी है। उसी से बड़ी-बड़ी कम्पनियों में बड़े-बड़े पैकेज के आधार पर नौकरियां मिल सकती हैं। इसी से कैरियर का रास्ता खुलता है। अब प्रशिक्षण के कार्य में लगे और उज्जवल कैरियर के रास्ते पर आगे बढ़ रहे छात्र इधर-उधर भटक कर अन्य मुद्दों को लेकर आन्दोलन करेंगे तो यह सुनहरे भविष्य के साथ खिलवाड़ नहीं तो और क्या है? आज के युग में कौन बुद्धिमान छात्र इस आग में हाथ डालना चाहेगा? स्वाभाविक है उसकी प्रासंगिकता के आगे प्रश्न चिन्ह तो लगेगा ही? क्योंकि आज की युवा पीढ़ी का भविष्य कारपोरेट जगत् द्वारा बनाये गये वेल्यूज और सेक्टरों (गली-मुहल्लों शब्द का प्रयोग भी किया जा सकता था, लेकिन वह शायद इस परिवेश में दकियानूसी हो जाता) में खुलता है, इसलिए युग के महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालयों के स्वरूप का निर्धारण भी कारपोरेट जगत् ही करेगा। सरकार ने भी स्वीकार कर लिया है कि विकास की कुंजी कारपोरेट जगत् के हाथ में ही है। यह अलग बात है कि किसी न किसी रूप में सरकार की कुंजी भी कारपोरेट जगत् के हाथ ही है। कारपोरेट जगत् की दृष्टि में इस देश के विश्वविद्यालय समय की गति के साथ चलने में असमर्थ हैं। उनमें जो पढ़ाया-लिखाया जा रहा है उसका भी युवा पीढ़ी के यथार्थ से कोई ताल्लुक नहीं है। अब इन विश्वविद्यालयों की हिमाकत देखिए ये साहित्य पढ़ा रहे हैं। सूरदास, तुलसी और गुरुनानक को पढ़ा रहे हैं। यहां तक कि कालिदास को भी पढ़ा रहे हैं। समाज शास्त्र, मानवशास्त्र और न जाने क्या क्या पढ़ा कर विश्वविद्यालय का बजट बर्बाद कर रहे हैं। ये सब पढ़ाने से क्या मिलेगा? अध्ययन का एक ही रास्ता है, उत्पादन में सहायक कलाओं का प्रशिक्षण प्राप्त करना। विकास के पथ पर भाग रही सरकार तो कारपोरेट जगत् के आगे बदहवास हो रही है। अतः उसने कारपोरेट जगत् को अपने ही विश्वविद्यालय खोलने की अनुमति दे दी है। देश में कुकुरमुत्तों की तरह प्राइवेट विश्वविद्यालय उग रहे हैं। मिठाई बेचने वाले, प्रापर्टी डीलर का काम करने वाले, जूता बनाने वाले सभी आजकल प्रायवेट विश्वविद्यालय के व्यवसाय में आ गये हैं। चोखा धन्धा है। जब तक चलता है ठीक है, यदि घाटा देना शुरू कर देगा तो कम्पनी भवनों के ऊपर से विश्वविद्यालय का फट्टा उतार कर किसी और व्यवसाय का बोर्ड लटका दिया जायेगा। कुछ विश्वविद्यालय ऐसे हैं जिन्हें कारपोरेट जगत् की कम्पनियां स्वयं चला रही हैं। उन्हें अपना व्यवसाय चलाने के लिए जिस प्रकार के जिन्दा रोबोट

चाहिए वे इन विश्वविद्यालयों से उन्हीं का उत्पादन कर रही है। ऐसे माहौल में छात्र आन्दोलन किसलिए और उसकी जरूरत भी क्या है? ग्लोबल बाजार की अमेरिकी अवधारणा ने श्रमिक आन्दोलन एवं छात्र आन्दोलन दोनों की प्रासंगिकता को प्रश्नित ही नहीं किया बल्कि उसकी संभावना को भी धूमिल कर दिया है।

परम्परागत विश्वविद्यालयों में चाहे शिक्षा प्रणाली एवं पद्धति कितनी भी दूषित क्यों न हो लेकिन वहां शिक्षा की समग्रता का आभास होता था। समाज विज्ञान, साहित्य, मानविकी, बेसिक विज्ञान, व्यवहारिक विज्ञान के छात्र एक साथ एक परिसर में रहते एवं पढ़ते हैं। परस्पर विचार विनिमय की अपार सम्भावनाएं बनी रहती है। विश्वविद्यालय का साझा पुस्तकालय सभी प्रकार के विषयों की पुस्तकों से भरा रहता है। अतः अन्तर्विषयी अध्ययन के अवसर उपलब्ध रहते हैं। इस प्रकार के विश्वविद्यालयों से वैचारिक आन्दोलन जन्म लेते हैं। वस्तुतः वैचारिक आन्दोलन या चिन्तन ही मानवीय प्रगति को मापने का बहुमूल्य कारक है।

परम्परागत विश्वविद्यालयों में चाहे शिक्षा प्रणाली एवं पद्धति कितनी भी दूषित क्यों न हो लेकिन वहां शिक्षा की समग्रता का आभास होता था। समाज विज्ञान, साहित्य, मानविकी, बेसिक विज्ञान, व्यवहारिक विज्ञान के छात्र एक साथ एक परिसर में रहते एवं पढ़ते हैं। परस्पर विचार विनिमय की अपार सम्भावनाएं बनी रहती हैं। विश्वविद्यालय का साझा पुस्तकालय सभी प्रकार के विषयों की पुस्तकों से भरा रहता है। अतः अन्तर्विषयी अध्ययन के अवसर उपलब्ध रहते हैं। इस प्रकार के विश्वविद्यालयों से वैचारिक आन्दोलन जन्म लेते हैं।

लेकिन कारपोरेट जगत् को या फिर कारपोरेट जगत् के हाथों की कठपुतली बनीं सरकारों को भी सबसे ज्यादा खतरा इन्हीं वैचारिक आन्दोलनों से होता है। अतः सरकार ने भी उससे छुटकारा पाने के लिए इस देश के विश्वविद्यालयों की धीरे-धीरे हत्या करनी प्रारम्भ कर दी है। विश्वविद्यालयों में प्राध्यापकों के पद भरे नहीं जा रहे हैं। प्रत्येक विश्वविद्यालय में ऐसे सैकड़ों पद रिक्त पड़े हैं। ऐसी स्थिति में नये पद सृजित करने का तो प्रश्न ही पैदा नहीं होता। सरकार शिक्षा को अब कल्याणकारी कृत्य नहीं मानती। इसलिए उसने विश्वविद्यालयों को आदेश दिया है कि अपने खर्चे लायक पैसा खुद कमाओ। सीधा अर्थ यह हुआ कि इन शिक्षा संस्थानों में खरीदी जाने वाली सीटों की संख्या बढ़ रही है। कुछ स्थानों पर तो विभाग में पूरी की पूरी सीटें खरीदी जाने वाली ही हैं। लाख, दो लाख या जितना भी मोल हो उसकी अदायगी करो और विभाग में सीट प्राप्त कर लो। मामला यदि नफा, नुकसान पर टिक जाये तो सीधा सा सूत्र है कमाओ ज्यादा, खर्चा कम करो। खर्चा कम करो यानि प्राध्यापकों को ठेके पर या प्रति पीरियड के हिसाब से दिहाड़ी पर या फिर संविदा के आधार पर नियुक्त करो। जाहिर है इस वातावरण में चिन्तन मनन नहीं हो सकता, सिर्फ डिग्री बटोरी जा सकती है।

बात है भी ठीक। जो विद्यार्थी लाखों रुपए देकर सीट खरीद कर पढ़ाई करेगा, वह चिन्तन मनन की गुत्थियां सुलझायेगा या फिर अपने कौशल में प्रशिक्षित होकर कारपोरेट जगत् का पुर्जा बनने को प्राथमिकता देगा? 15-20 लाख रुपए खर्चा करके मैडीकल कालिज में दाखिला लेने वाले विद्यार्थी से चिकित्सा को सेवा मानने का आग्रह करना बेकार होगा। क्योंकि उस द्वारा खर्चा गया 15-20 लाख रुपया उसे चिन्तन के इस धरातल पर अवस्थित ही नहीं होने देगा।

रही सही कसर भारत सरकार विदेशी विश्वविद्यालयों को भारत में आमंत्रित करके पूरी कर रही है। मैकाले भारतीय विश्वविद्यालयों में जिस शिक्षा पद्धति को लागू कर गये थे, उसने पूरा प्रयास किया कि अध्ययन अध्यापन से भारतीयता को निकाला जा सके। इसमें उसे सफलता भी मिली, परन्तु फिर भी भारत की मिट्टी की एवं संस्कारों की ऐसी विशेषता है कि इसकी गंध इतनी आसानी से नहीं छूटती। यूरोपीय देशों व अमेरिका को सस्ते भारतीय कारीगरों, वैज्ञानिकों एवं चिकित्सकों की जरूरत है। अभी भी ये लोग इन देशों में जा रहे हैं लेकिन ये उन देशों में जाकर भी एक लघु भारत का निर्माण कर लेते हैं। अपना सांस्कृतिक परिवेश कुछ सीमा तक वहां ले जाते हैं? आखिर इसका हल क्या निकाला जाये? सही हल यही है कि विदेशी विश्वविद्यालय भारत में ही खोल दिये जायें। ये विश्वविद्यालय कम से

कम अपने यहां पढ़ने वाली पीढ़ी को भारतीयता से तो बचा कर रखेंगे। भारत के भीतर एक लघु अमेरिका या ब्रिटेन का निर्माण करेंगे। इन विश्वविद्यालयों से प्रशिक्षित होकर जो कारीगर अमेरिका जायेंगे वे केवल अपने कैरियर के कैरियर होंगे। भारत के सांस्कृतिक कैरियर नहीं होंगे। इससे अमेरिका इत्यादि देश सांस्कृतिक प्रदूषण से बचे रहेंगे। इन विश्वविद्यालयों के भीतर सन्दर्भों को लेकर वैचारिक आन्दोलन चलाना तो मक्का में रामनामी चादर ओढ़ने के समान होगा। इन विश्वविद्यालयों के सरोकार अमेरिकी या यूरोपीय होंगे, भारतीय नहीं। सोनिया गांधी के मानव संसाधन विकास मंत्री कपिल सिब्बल इन्हीं विदेशी विश्वविद्यालयों को भारत भूमि में रोपने के लिए दिन-रात लगे हुए हैं। ये विश्वविद्यालय भारत भूमि में अमेरिका इत्यादि के छोटे-छोटे टापू बन जायेंगे।

जय प्रकाश नारायण के सम्पूर्ण क्रान्ति आन्दोलन की बागडोर बिहार और अन्य स्थानों पर अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद के वैचारिक आन्दोलन ने ही संभाली हुई थी। छात्रों का यह वैचारिक आन्दोलन इतना प्रबल सिद्ध हुआ कि कालान्तर में इसने भारतीय राजनीति की दिशा ही बदल दी।

जाहिर है कि इस तथाकथित नई शिक्षा के प्रणेता और पक्षधर शिक्षा संस्थानों में छात्र आन्दोलन की प्रासंगिकता का प्रश्न उठा रहे हैं। लेकिन वे जानते हैं कि मनुष्य परिवर्तनशील है। वह स्थापित से निरंतर डैविएट होता है, यह उसका स्वभाव है, प्रकृति है। इसलिए उन्हें पता है शिक्षा संस्थानों में आन्दोलन होंगे ही। परन्तु वे चाहते हैं कि ये आन्दोलन असली मुद्दों को लेकर न हो बल्कि नकली मुद्दों को लेकर हों। इन नकली मुद्दों की भी शिक्षा संस्थानों में कमी नहीं रहती। मसलन, कैंटीन में समोसा बड़े साईज का होना चाहिए। कैंटीन गंदी रहती है, वह साफ होनी चाहिए। कैंटीन में जो 'मुंडु' काम करते हैं, उनके कपड़े गंदे होते हैं, वे साफ होने चाहिए। ऐसे और भी मुद्दे हो सकते हैं। क्लासरूम में गर्मी होती है। लाइब्रेरी में उमस है। बिजली चली जाती है तो वैकल्पिक व्यवस्था नहीं है। क्लास में बैठने के लिए बैंच सख्त हैं, वे सुविधाजनक होने चाहिए। इन मुद्दों को लेकर शिक्षा संस्थानों में आन्दोलन हो तो सिस्टम के रखवालों एवं संरक्षकों को कोई चिन्ता नहीं है। बल्कि वे प्रसन्न हैं। आन्दोलन की स्पेस भी खाली नहीं रही और आन्दोलन सिस्टम का कुछ बिगाड़ भी नहीं पाया। सांप भी मर गया और लाठी भी नहीं टूटी। आजकल विद्यालयों में आमतौर पर इन्हीं प्रश्नों को लेकर आन्दोलन होते हैं। कुछ दिनों के बाद इस प्रकार की भौतिकवादी मांगों को लेकर चले आन्दोलन की सभी मांगे स्वीकार कर ली जाती हैं। अलबत्ता क्लास रूम को ए.सी. करने के एवज में सीट की कीमत बढ़ाई जा सकती है। दोनों पक्ष जीत का जश्न मनाते हैं। आन्दोलनकारी मांगे स्वीकार किए जाने का और सिस्टम के संरक्षक आन्दोलन को मूल मुद्दों से भटकाने का।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की इसी पृष्ठभूमि को देखते हुए, वैचारिक आन्दोलन की प्रासंगिकता सबसे ज्यादा महसूस की जा रही है। यदि ऐसा न हुआ तो भारतीय शिक्षा व्यवस्था जल्दी ही कारपोरेट जगत् की स्वार्थ सिद्धि का एक सशक्त अंग बन जायेगी। उदाहरण के लिए यदि विश्वविद्यालय में आन्दोलन इस बात को लेकर न हो कि कंटीन के 'मुंडु' के कपड़े गंदे हैं, बल्कि इस बात को लेकर हो कि विश्वविद्यालय में बच्चों से मजदूरी क्यों करवाई जा रही है। तब यह एक वैचारिक मुद्दा है और पूरी व्यवस्था को चुनौती देता है। जाहिर है ऐसे मुद्दे से व्यवस्था को डर लगता है। यदि आन्दोलन इस मुद्दे को लेकर हो कि प्रायवेट विश्वविद्यालय जो पैसा कमाता है, वह कहां खर्च करता है, उसका हिसाब-किताब रखने के लिए छात्र प्रतिनिधियों और मैनेजमेंट की सांझी कमेटी हो तो यह वैचारिक आन्दोलन होगा। क्योंकि इससे प्राइवेट विश्वविद्यालय खोलने वाला प्रापर्टी डीलर विश्वविद्यालय को मुनाफा कमाने की फैक्ट्री के तौर पर नहीं चला सकेगा।

इस देश में छात्र आन्दोलनों ने वैचारिक आन्दोलनों के माध्यम से ही व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन सम्पन्न करवाये थे। पिछली शताब्दी के छठे सातवें दशक में देश के विभिन्न भागों में चले सशक्त आन्दोलनों ने ही विश्वविद्यालयों में भारतीय भाषाओं को अध्ययन-अध्यापन में उनका उचित स्थान दिलवाया था। उससे पहले इन विश्वविद्यालयों पर अंग्रेजी भाषा सांप की तरह कुंडली मारकर बैठी थी। जिसके कारण आम आदमी की संतान और ग्रामीण क्षेत्र का युवा उच्च शिक्षा संस्थानों के बाहरी

दरवाजों पर ही लहूलुहान होकर वापिस आ जाता था। इन वैचारिक आन्दोलनों के कारण ही भारतीय भाषाओं का विश्वविद्यालयों में प्रवेश हुआ, जिसके कारण इनके दरवाजे ग्रामीण समाज और निम्न मध्य वर्ग के लिए भी खुल गये। इस समाज में शिक्षा की बयार ने ही कालान्तर में भारतीय राजनीति का स्वरूप बदल दिया।

असम में बंगलादेशी घुसपैठ के खिलाफ सबसे पहले वहां के छात्रों ने ही विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में सशक्त आन्दोलन छेड़ा था। यह आन्दोलन इतना जबरदस्त था कि इसने प्रदेश की सत्ता को ही बदलकर रख दिया था। और बंगलादेशी घुसपैठियों की समस्या को भारतीय राजनीति के एजेंडा में प्राथमिकता से दर्ज किया था।

जय प्रकाश नारायण के सम्पूर्ण क्रान्ति आन्दोलन की बागडोर बिहार और अन्य स्थानों पर अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद के वैचारिक आन्दोलन ने ही संभाली हुई थी। छात्रों का यह वैचारिक आन्दोलन इतना प्रबल सिद्ध हुआ कि कालान्तर में इसने भारतीय राजनीति की दिशा ही बदल दी। 1975 में इंदिरा गांधी द्वारा आरोपित आपात्स्थिति के विरोध में नानाजी देशमुख के नेतृत्व में लोक संघर्ष समिति द्वारा चलाये आन्दोलन और सत्याग्रह में छात्रों की भी प्रमुख भूमिका थी, इससे इंकार नहीं किया जा सकता।

1950 से लेकर 1980 तक दुनिया भर में जो छात्र आन्दोलन हुए वे अपनी मूल प्रकृति में वैचारिक थे न कि तात्कालिक भौतिकवादी मुद्दों को लेकर। हंगरी में रूस के अप्रत्यक्ष साम्यवादी शासन के खिलाफ विद्रोह का बिगुल वहां के छात्रों ने ही बजाया था। चैकोस्लोवाकिया पर दुबचेक के शासनकाल में रूस के अप्रत्यक्ष साम्यवादी शासन का विरोध वहां के विश्वविद्यालयी छात्रों ने ही किया था। उस समय एक छात्र जॉन पलॉख ने अपने प्राणों की आहुति देकर वैचारिक आन्दोलन का एक नया कीर्तिमान स्थापित किया था। स्थायित्ववादियों का तर्क है कि छात्रों को अपनी पढ़ाई और कैरियर पर ध्यान देना चाहिए। दरअसल ज्ञान व्यक्ति की चेतना को जगाता ही नहीं बल्कि उसे अन्याय के खिलाफ लड़ने के लिए झकझोरता भी है। यदि छात्र ही राष्ट्र जीवन व समाज के वैचारिक मुद्दों से कन्नी कतराकर निकल जायेंगे तो आखिर इन मौलिक प्रश्नों पर लड़ाई कौन लड़ेगा? क्या प्रौढ़ और वृद्ध पीढ़ी? क्या यह सम्भव है? वास्तव में परिवर्तन की वाहक छात्र एवं युवा पीढ़ी ही हो सकती है।

आज भारत संक्रमणकाल के चौराहे पर खड़ा है। विदेशों से इस पर अनेक दिशाओं से सांस्कृतिक आक्रमण हो रहे हैं। दुर्भाग्य से सत्ता के सूत्र जिन लोगों के हाथों में चले गये हैं वे भारत की सनातन सांस्कृतिक पहचान को ही सिरे से स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं। ऐसी स्थिति में वे इस सांस्कृतिक आक्रमण को न तो अनुभव कर सकते हैं और न ही इसके दुष्प्रभावों को समझ सकते हैं। द्वितीय भारत पर अमेरिका अपना आर्थिक साम्राज्यवाद लाद रहा है। केवल भारत पर ही नहीं बल्कि पूरे एशिया और अफ्रीका पर। इस आर्थिक साम्राज्यवाद को बढ़ाने के उद्देश्य से वह भारत की प्रभुसत्ता का भी अतिक्रमण कर रहा है। डब्ल्यू.टी.ओ. इत्यादि मुद्दों पर अनेक ऐसे अधिनियम हैं जिन्हें वह भारत को अधिनियमित करने के लिए विवश कर रहा है। परमाणु दायित्व विधेयक को पारित करने के लिए भारत सरकार पर दबाव बनाना इस सम्प्रभुता अतिक्रमण का खतरनाक उदाहरण है। ताज्जुब है भारत सरकार इसमें सहायक ही सिद्ध हो रही है।

यही कारण है कि ये शक्तियां, जिन्हें वर्तमान भारत सरकार की भी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष सहायता प्राप्त है, इस देश की शिक्षा व्यवस्था पर कब्जा कर लेना चाहती है। साथ ही शिक्षा संस्थानों में वैचारिक आन्दोलनों की प्रासंगिकता पर प्रश्नचिन्ह लगा रही है।

अब इसके परिणाम भी दिखाई देने लगे हैं। आज भारतीय विश्वविद्यालयों में तात्कालिक मुद्दों पर तो हलचल दिखाई दे जाती है, लेकिन वैचारिक मुद्दों पर गहरा सन्नाटा पसरा नजर आता है। विश्वविद्यालयों में कैरियर को लेकर गोष्ठी करना, चर्चा करना फैशन बनता जा रहा है और वैचारिक धरातल की चर्चा करना आउटडेटड में शुमार होता जा रहा है। यहां तक कि वैचारिक सरोकारों व चिन्तन मनन के केन्द्र, विश्वविद्यालयों के साहित्य-भाषा और सामाजिक विज्ञान विभागों को पिछवाड़े में फेंका जा रहा है। क्योंकि इन्हीं केन्द्रों से चिन्तन मनन के तीक्ष्ण शरसन्धान होते हैं।

वास्तव में अब जब भारत संक्रमण के चौराहे पर खड़ा है तब यह और भी जरूरी हो गया है कि विश्वविद्यालय वैचारिक आन्दोलनों के केन्द्र बनें न कि यथास्थितिवाद या फिर अमेरिकी ओर से आ रही सांस्कृतिक व आर्थिक साम्राज्यवाद की आंधी से अभिभूत होकर भारतीय जन मानस के सरोकारों से आंखें चुराने वाली भीड़ के केन्द्र बनें।

(लेखक हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, धर्मशाला परिसर के निदेशक हैं)

राजनीति से नहीं, राजनैतिक दलों से सावधान रहें छात्र

■ जवाहरलाल कौल

आज के संदर्भ में छात्र संघों की क्या प्रासंगिकता है? इस प्रश्न का उत्तर जांचने के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। अलग-अलग कोणों से दृश्य भी अलग-अलग ही दिखाई देगा। महाविद्यालयों या विश्वविद्यालयों में छात्र पढ़ने आते हैं, उनमें से बहुत से यहां रहते भी हैं। उनकी अनेक आवश्यकताएं भी होंगी ही-कुछ दिन-प्रतिदिन की चर्या के बारे में होगी तो कुछ शैक्षिक परिवेश के बारे में या अकादमीय वातावरण के बारे में। अपनी इन आवश्यकताओं को पूरा करवाने और विश्वविद्यालय में जीवन को अधिक सुचारू ढंग से चलाने के लिए अगर छात्र सामूहिक तौर पर अधिकारियों से बात करना चाहें और इस क्रम में एक संगठन का रूप बने तो यह किसी भी तरह अस्वाभाविक या अनुचित तो नहीं होगा। कल भी यह स्वाभाविक था आज भी स्वाभाविक है। लेकिन जब हम छात्र संघों की प्रासंगिकता की चर्चा करते हैं तो शायद इस स्वाभाविक प्रक्रिया से आगे की स्थिति पर विचार करना चाहते हैं। हम छात्र राजनीति की बात करना चाहते हैं। हमारा प्रश्न है कि क्या विश्वविद्यालयों को राजनीति का अखाड़ा बनाना चाहिए। इसे भी एक नजरिए से गलत ठहराया जा सकता है तो दूसरे से एकदम वाजिब। दरअसल अंतर राजनीति की परिभाषा और उसकी भूमिका के बारे में ही है।

जब देश संकट में हो, जब उसकी स्थिति चिंताजनक हो, अराजकता का माहौल हो तो किसी भी नागरिक से पूछना असंगत ही होगा कि वह देश के इस संकटकाल में अपना योग देगा कि नहीं। यह हम सब मानकर ही चलते हैं कि ऐसे मौके पर हमारा यह कर्तव्य है। ऐसे वातावरण में पहल युवक करें यह भी स्वाभाविक ही है। शिक्षालय युवकों की सबसे बड़ी संस्था होती है। वहां पढ़ रहे छात्र ऐसे माहौल से अछूते रहें यह कैसे सम्भव है? गांधी जी के विभिन्न आंदोलनों में अगर बड़ी संख्या में युवक मैदान में कूद पड़े तो उनमें अधिकतर किसी न किसी स्तर पर छात्र ही तो थे। छात्रों को स्कूल कालेज छोड़ कर स्वतंत्रता की जंग में सहयोग करने का आह्वान किया गया था। कारण यह था कि स्वतंत्रता की जंग अंग्रेजी गुलामी में शिक्षण से अधिक बड़ा उद्देश्य था। जिस उद्देश्य के लिए जान छोड़ी जा सकती थी उस के लिए पढ़ाई भी छोड़ी जा सकती थी। स्वतंत्रता के बाद भी कई महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर राष्ट्रीय आंदोलनों में छात्रों ने खुलकर भाग लिया। जेपी आंदोलन से भी पहले गुजरात छात्र आंदोलन और उससे भी पहले असम गण परिषद के आंदोलनों में छात्रों की बड़ी भूमिका रही है। स्पष्ट है कि किसी राष्ट्रीय संकट या आम जन के गहरे सरोकार के मुद्दे पर अगर युवा पीढ़ी में आक्रोश होता है तो उसका सीधा असर छात्रों पर पड़ेगा ही। क्योंकि न केवल शिक्षण संस्थान युवकों के सबसे बड़े केंद्र होते हैं अपितु ये युवक सामान्य युवकों की तुलना में समय और स्थिति की नजाकत को सही तरह समझ भी लेते हैं। यह केवल भारत में ही नहीं दुनिया के हर देश में हुआ है। हर बड़ी क्रांति या बदलाव में छात्रों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

विश्वविद्यालय ज्ञान का केंद्र होता है। जिन विषयों का अध्ययन वहां होता है उन सबका सम्बंध हमारे जन जीवन और राष्ट्र के हितों से होता है। देश और समाज को समझने के ही विभिन्न आयामों का अध्ययन और अनुसंधान

विश्वविद्यालय कोई अज्ञातवास नहीं होता जिस का बाहर की दुनिया से कोई रिश्ता ही न हो। शिक्षा समाप्ति के बाद उसे भी उसी दुनिया में आकर जीना और काम करना होता है। इसलिए विश्वविद्यालय के छात्र भी उसी समाज के अभिन्न अंग होते हैं जिसकी राजनीति होती है। समाज में जो हो रहा है उससे न तो छात्र अछूता रह सकता है और न ही अछूता रहना उचित ही है। इस मायने में छात्र संघों का किसी राजनैतिक सामाजिक या आर्थिक विचारधारा के प्रति आकर्षित होना या उसके प्रति झुकना कोई अस्वाभाविक बात नहीं अपितु इसे छात्रों की जागरूकता ही कहा जाएगा।

विश्वविद्यालयों में होता है। यह सोचना अव्यावहारिक है कि ऐसे संस्थानों में पढ़ने वाले युवा कृषि के बारे में जानकारी हासिल करें और कृषक के बारे उदासीन रहें, न्याय, राजनीति, संविधान, विकास, गरीबी, जल, जंगल, जमीन के बारे में खूब जानें लेकिन अपने आसपास इन मुद्दों की जमीनी सच्चाई से आंख मूंदे रहें? जिन छात्रों को केवल अपने ही भविष्य- बड़ी नौकरी, बड़े कारोबार की ही चिंता हो वे शायद आंखें मूंद भी लें, लेकिन अधिसंख्य युवा नहीं कर सकते। और वे देश की इन समस्याओं को अपने निजी दृष्टिकोण से देखना आरम्भ करते हैं। जिस विषय का वे छात्र अधययन कर रहे हों उस की वास्तविक स्थिति को जानना और समझना भी उसी शिक्षा का हिस्सा माना जा सकता है। विश्वविद्यालय कोई अज्ञातवास नहीं होता जिस का बाहर की दुनिया से कोई रिश्ता ही न हो। शिक्षा समाप्ति के बाद उसे भी उसी दुनिया में आकर जीना और काम करना होता है। इसलिए विश्वविद्यालय के छात्र भी उसी समाज के अभिन्न अंग होते हैं जिसकी राजनीति होती है। समाज में जो हो रहा है उससे न तो छात्र अछूता रह सकता है और न ही अछूता रहना उचित ही है। इस मायने में छात्र संघों का किसी राजनैतिक सामाजिक या आर्थिक विचारधारा के प्रति आकर्षित होना या उसके प्रति झुकना कोई अस्वाभाविक बात नहीं अपितु इसे छात्रों की जागरूकता ही कहा जाएगा।

स्वतंत्रता के बाद भी कई महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर राष्ट्रीय आंदोलनों में छात्रों ने खुलकर भाग लिया। जेपी आंदोलन से भी पहले गुजरात छात्र आंदोलन और उससे भी पहले असम गण परिषद के आंदोलनों में छात्रों की बड़ी भूमिका रही है। स्पष्ट है कि किसी राष्ट्रीय संकट या आम जन के गहरे सरोकार के मुद्दे पर अगर युवा पीढ़ी में आक्रोश होता है तो उसका सीधा असर छात्रों पर पड़ेगा ही। क्योंकि न केवल शिक्षण संस्थान युवकों के सबसे बड़े केंद्र होते हैं अपितु ये युवक सामान्य युवकों की तुलना में समय और स्थिति की नजाकत को सही तरह समझ भी लेते हैं।

लेकिन छात्रों की इस संगठित शक्ति के प्रभाव को देखकर राजनैतिक दलों में विश्वविद्यालयों में अपने-अपने अपने छात्र संगठन बनाने की प्रतिस्पर्धा चल पड़ी है। स्वतंत्र भारत में राजनैतिक दलों के बीच रस्साकशी का प्रतिबिम्ब छात्र संगठनों में दिखाई देने लगा। वामपंथी या राष्ट्रवादी धर्मनिरपेक्ष या क्षेत्रीय छाप के छात्र संगठनों की भरमार आरम्भ हो गई। गठबंधन और विघटन, दोनों प्रवृत्तियों का विश्वविद्यालयों में प्रवेश हो गया। जब राष्ट्रीय राजनीति विखंडित हो और नैतिक पतन की ओर जा रही हो, जब राजनैतिक दलों का मुख्य उद्देश्य सत्ता पर किसी भी प्रकार कब्जा करना भर हो, जब चुनाव प्रणाली भ्रष्ट लोगों के हाथों में खेलने लगी हो तो राजनैतिक दलों का विश्वविद्यालयों के छात्र संघों पर अधिकार और विश्वविद्यालयों के काम-काज में हस्तक्षेप छात्रों और देश के हित में कितना होगा, यह प्रश्न सामयिक भी है और प्रासंगिक भी। यह कहना एक बात है कि विचारधाराओं का जन्म विश्वविद्यालयों में ही होता है, लेकिन यह बात दूसरी है कि राजनैतिक दलों को अपने पालतू संगठनों के माध्यम से विश्वविद्यालयों को अपने कार्यकताओं का प्रशिक्षण स्थल बनाने का अधिकार है। वह समय अब हमारे देश में नहीं रहा जब राजनैतिक दल निश्चित विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करते थे। अब शायद ही कोई राष्ट्रीय दल यह दावा कर सके कि वह उसी विचारधारा पर चलता है जिसके आधार पर उसका गठन हुआ था। यह न तो तथाकथित गांधीवादी दलों का दावा हो सकता है, न मार्क्सवादी दलों का और न ही राष्ट्रवादी दलों का। ये केवल बिल्ले हैं, विचारधाराएं नहीं। फिर अब तो राजनैतिक दलों को दावा करने के लिए भी विचारधाराओं की आवश्यकता नहीं पड़ती है। किसी जाति प्रजाति, क्षेत्र या किसी भाषा-बोली, किसी संप्रदाय के भी राजनैतिक दल देश में हैं और कहीं-कहीं सत्ता में भी है। ऐसे में राजनैतिक दलों के सीधे हस्तक्षेप से विश्वविद्यालयों का वातावरण भी उतना ही दूषित होगा जितना राजनीति का है। छात्र संघों के चुनावों में धन और बल का भारी उपयोग हमारी राजनैतिक दलों की ही देन है। इस माहौल में प्रशिक्षित छात्र सामाजिक समरसता में या अखिल भारतीय दृष्टिकोण विकसित करने में कितना योगदान कर पाएंगे यह प्रश्न ऐसा है जिसका उत्तर छात्रों को स्वयं देना चाहिए। *(लेखक वरिष्ठ पत्रकार एवं चिंतक हैं)*

आंदोलन अर्थात् एक उद्देश्य, एक नारा, एक नेतृत्व

■ आलोक कुमार

परिवर्तन हमेशा भूख और अभाव से नहीं होता। लोग भूखों रह जाते हैं, अभाव भी सहन कर जाते हैं। सभी लड़ने या मरने नहीं जाते। आन्दोलन तब होते जब लोगों को जीवन के लिए एक उद्देश्य, एक नारा, एक नेतृत्व मिल जाता है। जिसके लिए वे लड़ सकें। आंदोलन खड़ा करता है, वर्तमान व्यवस्था से असंतुष्टि और अपने जीवन को बलिदान कर देने वाला वह आदर्श जो व्यवस्था को ठीक कर देने का स्वप्न दिखाता है।

यदि विद्यार्थी आंदोलन की बात करें तो विद्यार्थी परिषद ने इसमें एक बड़ा बदलाव लाया, जब उसने 'आज का विद्यार्थी कल का नागरिक' जैसे सूत्र वाक्यों से इंकार किया। परिषद का मानना है कि 'आज का विद्यार्थी आज का नागरिक' है।

जयप्रकाश नारायण के आंदोलन की चर्चा अक्सर होती है। उनके नेतृत्व में व्यवस्था से असंतोष के साथ संपूर्ण क्रांति का नारा हुआ। जब जेपी जैसा विश्वनीय नेता खड़ा हुआ तो आंदोलन की तीनों शर्तें पूरी हुई।

पहली नौजवानों में व्यवस्था से असंतोष, दूसरा संपूर्ण क्रांति का बड़ा स्वप्न और तीसरा सबसे महत्वपूर्ण जेपी का विश्वनीय नेतृत्व। जब तीनों शर्तें पूरी हुई तो आंदोलन अपने चरम तक पहुंचा और परिवर्तनकारी साबित हुआ। मुझे याद है, '74 में दिल्ली विश्वविद्यालय में एबीवीपी (अरुण जेटली, विजय बिन्दल, हेमंत विश्नोई और पूर्णिमा सेठी) का पूरा पैनल जीता था। उस वक्त वह पैनल एबीवीपी के नाम से ही प्रसिद्ध था। इस चुनाव की खास बात यह थी कि इस बार डूसू का चुनाव कैम्पस की अव्यवस्था के लिए नहीं लड़ा गया, बल्कि देश को बदलने के लिए था। इस चुनाव में अरुण जेटली 17,000 वोट के अंतर से जीते थे। चूंकि उस वक्त पूरा देश ही व्यवस्था परिवर्तन की लड़ाई लड़ रहा था, इस आंदोलन में असाधारण प्रतिभा के लोग सामने आए, जैसे आजादी के छात्र आंदोलन में थे। जहां जितनी जरुरत, वहां उतने ही क्षमतावान नेता। उदाहरण के तौर पर रामबहादुर राय, गोविन्दाचार्य, रविशंकर, सुशील मोदी, वेंकैया नायडू आदि।

यह आंदोलन बढ़ा जयप्रकाशजी की वजह से और चरम पर पहुंचा आपातकाल के समय। इसी दौरान गुजरात में 'नवनिर्माण' के नाम से छात्रों का एक और आंदोलन चल रहा था। इस आंदोलन में राजनीतिक दलों के नेताओं का प्रवेश वर्जित था। मैंने इस दौरान एक छात्र नेता की हैसियत से पूरे गुजरात का दौरा किया। मेरी किसी जनसभा में दस-बारह हजार से कम की भीड़ नहीं रही। छात्रों की मांग थी, गुजरात के मुख्यमंत्री चिमनभाई पटेल अपने विधायकों के साथ त्याग-पत्र दें। छात्र आंदोलनकारियों के साथ मोरारजी देसाई भूख हड़ताल पर बैठे और छात्रों का यह आंदोलन सफल हुआ। सरकार गिर गई।

12 जून 1975 की तारीख दो अर्थों में बेहद महत्वपूर्ण होकर आई। गुजरात में चिमनभाई की सरकार गई। कांग्रेस (ओ) के बाबू भाई पटेल मुख्यमंत्री बने और इंदिरा गांधी का चुनाव अवैध घोषित हो गया। जून में आपातकाल लगा और चुनाव हुए और सरकार गई।

देश को पुनः एक स्वप्न और उन स्वप्नों के लिए उनका नेतृत्व करने वाला विश्वसनीय नेतृत्व खोजना है। हमारी तरुणाई में ऐसा नेतृत्व हमारे पास था। हमें विश्वास है कि भारत पुनः अपना मार्ग खोज लेगा और हमारे जीवन में अपने लक्ष्य को हम प्राप्त करेंगे।

देश को पुनः एक स्वप्न और उन स्वप्नों के लिए उनका नेतृत्व करने वाला विश्वसनीय नेतृत्व खोजना है। हमारी तरुणाई में ऐसा नेतृत्व हमारे पास था। हमें विश्वास है कि भारत पुनः अपना मार्ग खोज लेगा और हमारे जीवन में अपने लक्ष्य को हम प्राप्त करेंगे।

(लेखक दिल्ली उच्च न्यायालय में अधिवक्ता हैं तथा दिल्ली विश्वविद्यालय छात्र संघ के अध्यक्ष रहे हैं)

खामोश परिसरों को जिंदा करने की जरूरत

सार्थक प्रतिरोध की शक्ति को जगाएं छात्र संगठन

■ संजय द्विवेदी

छात्र आन्दोलन के यह सबसे बुरे दिन हैं। छात्र आन्दोलनों का यह विचलन क्यों है अगर इसका विचार करें तो हमें इसकी जड़ें हमारी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था में दिखाई देंगी। आज के तमाम हिंसक अभियानों व आंदोलनों के पीछे और आगे युवा ही दिखते हैं। यह हो रहा है और हम इसे देखते रहने को मजबूर हैं। क्योंकि स्पष्ट सोच, वैचारिक ऊर्जा और समाज जीवन में मूल्यों की घटती अहमियत ने ही ऐसे हालात पैदा किए हैं। ऐसे में विघटनकारी तत्वों ने समाज को बदलने की ऊर्जा रखने वाले नौजवानों के हाथ में कश्मीर, पूर्वोत्तर के सात राज्यों समेत तमाम नक्सल प्रभावित राज्यों में हथियार पकड़ा दिए हैं। भारतीय युवा एवं छात्र आन्दोलन कभी इतना दिशाहारा और थकाहारा न था। आजादी के पहले नौजवानों के सामने एक लक्ष्य था। अपने बेहतर कैरियर की परवाह न करके उस दौर में उन्होंने त्याग और बलिदान का इतिहास रचा। भाषा और प्रांत की दीवारें तोड़ते हुए देश के हर हिस्से के नौजवान ने राष्ट्रीय आन्दोलन में अपना योगदान किया।

आजादी के पहले नौजवानों के सामने एक लक्ष्य था। अपने बेहतर कैरियर की परवाह न करके उस दौर में उन्होंने त्याग और बलिदान का इतिहास रचा। भाषा और प्रांत की दीवारें तोड़ते हुए देश के हर हिस्से के नौजवान ने राष्ट्रीय आन्दोलन में अपना योगदान किया।

आजादी के बाद बिगड़े हालात

आजादी के बाद यह पूरा का पूरा चित्र बदल गया। नौजवानों के सामने न तो सही लक्ष्य रखे गए, न ही देश की आर्थिक संरचना में युवाओं का विचार कर ऐसे कार्यक्रम बनाए गए जिससे देश के विकास में उनकी भागीदारी तय हो पाती। इस सबके बावजूद देश के महान नेताओं के प्रभामंडल से चमत्कृत छात्र-युवा शक्ति, उनके खिलाफ अपनी जायज मांगों को लेकर भी न खड़ी हो पायी। क्योंकि उस दौर के लगभग सभी नेता राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़े थे और उनकी देशनिष्ठा-कर्तव्यनिष्ठा पर उंगली उठाना सम्भव न था। किन्तु यह दौर 1962 में चीन-भारत युद्ध में भारत की हार के साथ खत्म हो गया। यह हताशा इस पराजय के बाद व्यापक छात्र -आक्रोश के रूप में प्रकट हुई। देश के महानायकों के प्रति देश के छात्र-युवाओं के मोहभंग की यह शुरूआत थी।

1962 का यह साल, आजादी मिलने के बाद छात्र-आन्दोलन में आई चुप्पी के टूटने का साल था। भारतीय सेनाओं की पराजय से आहत युवा मन को यदि उस समय कोई सार्थक नेतृत्व मिला होता तो निश्चय ही देश की तस्वीर कुछ और होती। इसके तत्काल बाद सरकार ने महामना मालवीय द्वारा स्थापित काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का नाम बदलकर काशी विश्वविद्यालय रखने का विधेयक लोकसभा में प्रस्तुत किया। इस प्रसंग में पूरे देश के नौजवानों की तीखी प्रतिक्रिया के चलते सरकार को विधेयक वापस लेना पड़ा। अपनी सफलता के बावजूद इस प्रसंग ने छात्र राजनीति को धार्मिक आधार पर बांट दिया। इन्हीं दिनों भाषा विवाद भी गहराया और इसने भी छात्रों को उत्तर-दक्षिण दो खेमों में बांट दिया। दक्षिण में छात्रों के अंग्रेजी समर्थक आन्दोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया। 1967 का यह दौर भाषा आन्दोलन तीव्रता का समय था। सरकार द्वारा अंग्रेजी को स्थायी रूप से जारी रखने के फैसले के खिलाफ उत्तर भारत में चले इस आन्दोलन को समाज का भी व्यापक समर्थन प्राप्त हुआ। कई बड़े साहित्यकारों ने

अपनी उपाधियां और पुरस्कार सरकार को लौटाकर अपना आक्रोश जताया। छात्र आन्दोलन की व्यापकता और सामाजिक समर्थन के बावजूद सरकारी हठधर्मिता के चलते अंग्रेजी को स्थायित्व देने वाला विधेयक लोकसभा में पारित हो गया। इस आन्दोलन ने छात्रों के मन में तत्कालीन शासन के प्रति गुस्से का निर्माण किया। इस दौर में सत्ता से क्षुब्ध नौजवान हिंसक प्रयोगों की ओर भी बढ़े, जिसके फलस्वरूप नक्सली आन्दोलन का जन्म और विकास हुआ। इसके नेता चारू मजूमदार, जंगल संथाल और कानू सान्याल थे। इसके पीछे अहिंसक विचारधारा से उपजा नैराश्य था जिसने नौजवानों के हाथ में बंदूकें पकड़ा दीं।

व्यवस्था परिवर्तन के वाहक

इन अवरोधों के बावजूद नौजवानों का जज्बा मरा नहीं। वह निरंतर सत्ता का सार्थक प्रतिरोध करते हुए व्यवस्था परिवर्तन की धार को तेज करने की कोशिशों में लगा रहा। इन दिनों अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद, समाजवादी युवजन सभा, स्टूडेंट फेडरेशन आफ इंडिया जैसी तीन राजनीतिक शक्तियां परिसरों में सक्रिय थीं। तीनों की अपनी निश्चित प्रतिबद्धताएं थीं। इन संगठनों ने छात्रसंघ चुनावों में अपने हस्तक्षेप से छात्रों के जोश और उत्साह को रचनात्मक दिशा प्रदान की। छात्रों के भीतर जो उत्तेजनाएं थीं उन्हें जिंदा रखकर उसका सही ढंग से इस्तेमाल किया गया। इस दौर में डॉ. राममनोहर लोहिया के व्यक्तित्व का नौजवानों पर खासा असर रहा।

इस सदी के आखिरी बड़े छात्र आंदोलन की शुरूआत 1973 में गुजरात के एक विश्वविद्यालय के मेस की जली रोटियों के प्रतिरोध के रूप में हुई और उसने राष्ट्रीय स्तर पर ऐतिहासिक छात्र आन्दोलन की भावभूमि तैयार की। विद्यार्थी परिषद, युवजन सभा के नेताओं की सक्रियता और जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व संभालने के बाद यह आन्दोलन युवाओं की भावनाओं का प्रतीक बन गया। किन्तु सत्ता परिवर्तन के बाद कुर्सी की रस्साकशी में सम्पूर्ण क्रांति का नारा तिरोहित हो गया। रही सही कसर जेपी के असामयिक निधन ने पूरी कर दी। यह भारतीय छात्र आन्दोलन के बिखराव, ठहराव और तार-तार होकर बिखरने के दिन थे। नौजवान असहाय और ठगे-ठगे से जनता प्रयोग की विफलता का तमाशा देखते रहने को मजबूर थे।

आदर्शविहीनता ने ली मूल्यों की जगह

सपनों के इस बिखराव के चलते छात्र राजनीति में मूल्यों का स्थान आदर्शविहीनता ने ले लिया। राजनीति से हुई अपनी अनास्था और प्रतिक्रिया जताने की गरज से युवा रास्ते तलाशने लगे। आदर्शविहीनता के सबसे बड़े प्रतीक के रूप में तब तक संजय गांधी का उदय हो चुका था। उनके साथ विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाली उद्दंड नौजवानों की एक पूरी फौज थी जो सारा कुछ डंडे के बल पर नियंत्रित करना चाहती थी। जिसके पास आदर्श और नैतिकता नाम की कोई चीज नहीं थी। जेपी आन्दोलन में पैदा हुई युवा नेताओं की इफरात जमात, जनता पार्टी की सम्पूर्ण क्रांति की विफलता की प्रतिक्रिया में युवक कांग्रेस से जुड़ गयी। यहां 'संजय गांधी परिघटना' की जीत हुई और छात्र आन्दोलनों से नैतिकता, आस्था और विचार दर्शन की राजनीति के भाव तिरोहित हो गए। इसके बाद शिक्षा मंदिरों में हिंसक राजनीति, छेड़छाड़, अध्यापकों से दुर्व्यवहार,

आजादी के बाद यह पूरा का पूरा चित्र बदल गया। नौजवानों के सामने न तो सही लक्ष्य रखे गए, न ही देश की आर्थिक संरचना में युवाओं का विचार कर ऐसे कार्यक्रम बनाए गए जिससे देश के विकास में उनकी भागीदारी तय हो पाती। इस सबके बावजूद देश के महान नेताओं के प्रभामंडल से चमत्कृत छात्र-युवा शक्ति, उनके खिलाफ अपनी जायज मांगों को लेकर भी न खड़ी हो पायी। क्योंकि उस दौर के लगभग सभी नेता राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़े थे और उनकी देशनिष्ठा-कर्त्तव्यनिष्ठा पर उंगली उठाना सम्भव न था। किन्तु यह दौर 1962 में चीन-भारत युद्ध में भारत की हार के साथ खत्म हो गया। यह हताशा इस पराजय के बाद व्यापक छात्र -आक्रोश के रूप में प्रकट हुई। देश के महानायकों के प्रति देश के छात्र-युवाओं के मोहभंग की यह शुरूआत थी।

गुण्डागर्दी, नकल, अराजकता और अनुशासनहीनता का सिलसिला प्रारंभ हुआ। छात्रसंघ चुनावों में बमों के धमाके सुनाई देने लगे। संसदीय राजनीति की सभी बुराईयां छात्रसंघ चुनावों की अनिवार्य जरूरत बन गयीं। परिसरों में पठन-पाठन का वातावरण बिगड़ा। छात्र अपने मूल मुद्दों से भटक गए। दलीय राजनीति, जातीय राजनीति, माफियाओं और धनपतियों की घुसपैठ ने छात्रसंघों की प्रासंगिकता पर सवाल खड़े कर दिये। इससे छात्र राजनीति की धीमी मौत का सिलसिला शुरू हो गया। इसी दौर में लखनऊ विश्वविद्यालय छात्रसंघ के अध्यक्ष रवींद्र सिंह की हत्या हुई और कुछ परिसरों से छात्राओं के साथ दुराचार की खबरें भी आयीं। इन सूचनाओं ने वातावरण को बहुत विषाक्त कर दिया। इससे परिसर संस्कृति विकृत हुई।

इस सदी के आखिरी बड़े छात्र आंदोलन की शुरूआत 1973 में गुजरात के एक विश्वविद्यालय के मेस की जली रोटियों के प्रतिरोध के रूप में हुई और उसने राष्ट्रीय स्तर पर ऐतिहासिक छात्र आन्दोलन की भावभूमि तैयार की। विद्यार्थी परिषद, युवजन सभा के नेताओं की सक्रियता और जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व संभालने के बाद यह आन्दोलन युवाओं की भावनाओं का प्रतीक बन गया। किन्तु सत्ता परिवर्तन के बाद कुर्सी की रस्साकशी में सम्पूर्ण क्रांति का नारा तिरोहित हो गया।

विफल हुआ असम आन्दोलन

1981 में असम छात्र आंदोलन की अनुगूंज सुनाई देने लगी। लम्बे संघर्ष के बाद प्रफुल्ल कुमार महंत असम के मुख्यमंत्री बने। किन्तु सत्ता में आने के बाद महंत की सरकार ने बहुत निराश किया। यह सही मायने में पहली बार पूरी तरह छात्र आन्दोलन से बनी सरकार थी। जिसकी निराशाजनक परिणति ने छात्र आन्दोलनों की नैतिकता और समझदारी पर सवालिया निशान लगा दिए। इस घटाटोप के बीच राजीव गांधी जैसे युवा प्रधानमंत्री के उभार ने युवाओं को एक अलग तरीके से प्रेरित किया किन्तु जल्दी ही बोफोर्स के धुंए में सब तार-तार हो गया। फिर विश्वनाथ प्रताप सिंह राष्ट्रीय परिदृश्य पर अपनी भ्रष्टाचार विरोधी मुहिम के साथ प्रकट हुए। नौजवान उनके साथ पूरी ऊर्जा से लगा और वे देश के प्रधानमंत्री बने। यहां फिर जनता प्रयोग जैसे हाल और सत्ता संघर्ष से नौजवानों को निराशा ही हाथ लगी। मंडल आयोग की रिपोर्ट को हड़बड़ी में लागू करने के चलते नौजवानों के एक तबके में अलग किस्म का आक्रोश नजर आया। इस आंदोलन में हुई आत्महत्याएं निराशा का चरमबिन्दु थीं। ये बताती थीं कि युवा व्यवस्था में अपनी जगह को सिकुड़ता हुआ पाकर कितना निराश है। ऐसा लगा कि नौजवानों के पास अब भविष्य की आशा, आदर्श और भविष्य की इच्छाएं चुक सी गयी हैं। इस दौर में संघर्ष के मार्ग को लूट के मार्ग में बदल दिया। बड़े आदर्शों की जगह, विखंडित आदर्शों ने अपनी जगह बना ली।

छात्रसंघों की प्रासंगिकता पर उठे सवाल

यह परिस्थितियां बताती थीं कि कमोबेश समस्त छात्र संगठन और छात्र नेता राजनीतिक दलों की चेरी बन गए हैं। छात्र संगठनों के एजेंडे भी अब राजनीतिक पार्टियां तय कर रही हैं। ये समूह किसी परिवर्तन का वाहक न बनकर अपनी ही पार्टी का साइनबोर्ड बनकर रह गए। इनके सपने, आदर्श सब कुछ कहीं और तय होते हैं। छात्रसंघों की बदलती भूमिका और घटती प्रासंगिकता ने छात्रों के मन से उनके प्रति सहानुभूति खत्म कर दी है। छात्रसंघ चुनावों को उन मुख्यमंत्रियों ने भी प्रतिबंधित कर रखा है जो छात्र आंदोलन से ही जन्मे हैं। जहां चुनाव हो रहे हैं वहां भी मतदान का प्रतिशत गिर रहा है। ऐसा लगता है कि छात्रसंघ अब आम छात्रों की शैक्षणिक और सांस्कृतिक प्रतिभा के उन्नयन का माध्यम नहीं रहे। वे अराजक तत्वों और माफियाओं के अखाड़े बन गये हैं। छात्रसंघों ने सदैव भ्रष्ट राजसत्ता को चुनौती देने का काम किया है किन्तु आज वे सत्तासीनों की आंख में गड़ने लगे हैं। छात्रसंघ चुनाव की विकृतियां भी हमारे संसदीय लोकतंत्र की ही देन हैं। यहां तर्क यह भी है कि तमाम बुराईयों के बावजूद लोकसभा से लेकर पंचायत के चुनाव हम करा रहे हैं तो छात्रसंघ ही प्रतिबंधित क्यों। हमें इन चुनावों में सुधार की बात करनी चाहिए न कि इनका गला घोंटना चाहिए।

कुल मिलाकर देश को अपनी रचनात्मकता और संघर्ष

में दिशा देने वाले परिसर आज नैतिकता और संस्कारहीन व्यवहार का पर्याय बन गये हैं। जो परिसर ज्वलंत राष्ट्रीय मुद्दों पर संवाद का केन्द्र हुआ करते थे, वे आज मूल्यहीन आपराधिक राजनीति का केन्द्र बन गए हैं। जिन छात्रसंघों से निकले छात्र नेताओं ने देश का योग्य मार्गदर्शन किया और राजनीति को दिशा दी वहीं से आज पथभ्रष्ट और टुटपुजियां कार्यकर्ता निकल रहे हैं। ऐसे हालात में छात्र राजनीति के समाने गहरा संकट है। अपने शैक्षिक अधिकारों, निर्धनता, बेरोजगारी और विषमता के खिलाफ इन परिसरों से आवाज नहीं आती। अन्याय के खिलाफ एकजुट होकर लड़ने की प्रवृत्ति भी कम हुई है। आज भी आदर्शविहीनता, बाजारवादी हवाओं में हमारे परिसरों में संस्कृति कर्म के नाम पर फेयरवेल या फ्रेशर्स पार्टियां होती हैं जहां हमारे युवा मस्त-मस्त होकर झूम रहे हैं। परिसर अंततः छात्रों की प्रतिभा के सर्वांगीण विकास का मंच है। उन्हें विकसित और संस्कारित होने के साथ लोकतांत्रिक प्रशिक्षण देना भी परिसरों की जिम्मेदारी है ताकि वे जिम्मेदार नागरिक व भारतीय भी बन सकें।

संवाद नहीं, परिसरों में पसरा मौन

परिसरों का सबसे बड़ा संकट यही है वहां अब संवाद नदारद हैं, बहसें नहीं हो रही हैं, सवाल नहीं पूछे जा रहे हैं। हर व्यवस्था को ऐसे खामोश परिसर रास आते हैं-जहां फ्रेशर्स पार्टियां हों, फेयरवेल पार्टियां हों, फैशन शो हों, मेले-ठेले लगें, उत्सव और रंगारंग कार्यक्रम हों, फूहड़ गानों पर नौजवान थिरकें, पर उन्हें सवाल पूछते, बहस करते नौजवान नहीं चाहिए। सही मायने में हमारे परिसर एक खामोश मौत मर रहे हैं। राजनीति और व्यवस्था उन्हें ऐसा ही रखना चाहती है। क्या आप उम्मीद कर सकते हैं आज के नौजवान दुबारा किसी जयप्रकाश नारायण के आह्वान पर दिल्ली की कुर्सी पर बैठी मदांध सत्ता को सबक सिखा सकते हैं। आज के दौर में कल्पना करना मुश्किल है कि कैसे गुजरात के एक मेस में जली हुई रोटी वहां की तत्कालीन सत्ता के खिलाफ नारे में बदल जाती है और वह आंदोलन पटना के गांधी मैदान से होता हुआ सम्पूर्ण क्रांति के नारे मे बदल जाता है। याद करें परिसरों के वे दिन जब इलाहाबाद, बनारस, लखनऊ, दिल्ली, जयपुर, पटना के नौजवान हिंदी आन्दोलन के लिए एक होकर साथ निकले थे। वे दृश्य आज क्या संभव हैं। इसका कारण यह है कि राजनीतिक दलों ने इन सालों में सिर्फ बांटने का काम किया है। राजनीतिक दलों ने नौजवानों और छात्रों को भी एक सामूहिक शक्ति के बजाए टुकड़ों-टुकड़ों में बांट दिया है। सो वे अपनी पार्टी के बाहर देखने, बहस करने और सच्चाई के साथ खड़े होने का साहस नहीं जुटा पाते। जनसंगठनों में जरूर तमाम नौजवान दिखते हैं, उनकी आग भी दिखती है किन्तु हमारे परिसर नौकरी करने और ज्यादा पैसा कमाने के लिए प्रेरित करने के अलावा क्या कर पा रहे हैं। एक लोकतंत्र में यह खामोशी खतरनाक है। छात्र आंदोलन के दिन तभी बहुरेंगे जब परिसरों में दलीय राजनीति के बजाय छात्रों का स्वविवेक, उनके अपने मुद्दे-शिक्षा, बेरोजगारी, महंगाई, भाषा के सवाल, देश की सुरक्षा के सवाल एक बार फिर उनके बीच होंगे। छात्र राजनीति के वे सुनहरे दिन तभी लौटेंगे जब परिसरों से निकलने वाली आवाज ललकार बने तभी देश का भविष्य बनेगा। देश के पूर्व राष्ट्रपति एपीजे अब्दुल कलाम इसी भरोसे के साथ परिसरों में जा रहे हैं कि देश का भविष्य बदलने और बनाने की तकत इन्हीं परिसरों में है। क्या हमारी राजनीति, सत्ता और व्यवस्था के पास नौजवानों के सपनों की समझ है कि वह उनसे संवाद बना पाए।

देश का औसत नौजवान आज भी ईमानदार, नैतिक, मेहनती और बड़े सपनों को सच करने के संघर्ष में लगा है क्या हम उसके लिए यह वातावरण उपलब्ध कराने की स्थिति में हैं। हमें सोचना होगा कि ये भारत के लोग जो नागरिक बनना चाहते हैं उन्हें व्यवस्था सिर्फ वोटर और उपभोक्ता क्यों बनाना चाहती है। ऐसे कठिन समय में जब बाजार हमारी सभी स्वाभाविक प्रवृत्तियों पर अपनी रूचियों का आरोपण कर रहा है, ऐसे में हर तरह के आंदोलन, संवाद और बहसें खतरे में हैं। इसे बचाने के लिए के हम सभी को अपने-अपने तरीक से काम करने की जरूरत है क्योंकि तभी लोकतंत्र बचेगा और मजबूत भी होगा। खामोश परिसर हमारे लिए खतरे की घंटी हैं क्योंकि वे कारपोरेट के पुरजे तो बना सकते हैं पर मनुष्य बनाने के लिए संवाद, विमर्श और लड़ाइयां जरूरी हैं। इसलिए हमें नए जमाने के नए हथियारों और नए तरीकों से फिर से उस आन्दोलन की धार को पाना होगा जिसे गंवा बैठने का दुख हर संवेदनशील आदमी को बेतरह मथ रहा है।

(लेखक माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल में जनसंचार विभागाध्यक्ष हैं)

(ई-मेल : 123dwivedi@gmail.com)

छात्र आन्दोलन का व्यापक विस्फोट जरूरी

■ राजनारायण शुक्ल

आजकल एक चर्चा हो रही है। शिक्षा क्षेत्र के संदर्भ में। वो यह कि छात्र आन्दोलन अप्रासंगिक हो गया है। ये कि आज के भारत में छात्र आन्दोलनों की कोई आवश्यकता नहीं है याकि छात्र आन्दोलन दिशाहीन होते हैं। इसीलिए उनका होना राष्ट्रहित में नहीं। या कि छात्र आन्दोलन देश के विद्यार्थियों के कैरियर में बाधा पहुंचाएगा और इस तरह देश के निर्माण में भी। इस प्रकार के बहुत सारे प्रश्न हैं जो छात्र आन्दोलन के भविष्य को लेकर उठ रहे हैं। छात्र आन्दोलन के भविष्य की चिन्ता करने वालों में दोनों प्रकार के लोग हैं। वे जो छात्र आन्दोलन के पक्षधर हैं। और वे जो किसी भी प्रकार के छात्र आन्दोलन को निरर्थक मानते हैं।

वस्तुत: क्या छात्र आन्दोलन अब देश के विकास के लिए आवश्यक नहीं रहे। और क्या पिछले छात्र आन्दोलनों से देश के भविष्य को संवारने में कोई योगदान हासिल हुआ है। यह सवाल इस मायने में भी महत्वपूर्ण है जब कुछ लोग यह मानते हैं कि छात्र आन्दोलन निरर्थक हैं।

दरअसल छात्र आन्दोलन का इतिहास तत्कालीन दमनकारी नीतियों, व्यवस्था की खामियों और गुलामी के बोझ के विरुद्ध व्यापक संघर्ष और बलिदान का इतिहास रहा है। इतिहास लेखन में अगर भारतीय छात्र आन्दोलनों के इतिहास लेखन का ध्यान रखा गया होता तो उसमें अनेक स्वर्णिम और गौरवमयी पृष्ठ जुड़ते।

अपने देश को गुलामी की जंजीरों से मुक्त कराने के प्रयास से छात्र कैसे अछूते रह सकते हैं। इसीलिए सन् 1874 ई. में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और आनन्द मोहन बोस ने 'कोलकाता स्टुडेण्ट एसोसिएशन' की स्थापना कर भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन, स्वदेशी आन्दोलनों में छात्रों के साथ बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया। स्वतंत्रता आन्दोलन के हमारे प्रमुख महान नेताओं लोक मान्य बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय, विपिन चन्द्र पाल, एनीबेसेंट आदि ने छात्र जागरण के माध्यम से जन आन्दोलन में प्राण फूंकने का काम किया।

भारत में छात्र आन्दोलन की आवश्यकता के विचार पर एक बड़ा ऐतिहासिक और क्रान्तिकारी मोड़ तब आया जब 1920 ई. में महात्मा गांधी ने अपने प्रसिद्ध असहयोग आन्दोलन में देश के छात्रों से पढ़ाई छोड़कर शामिल होने का आह्वान किया। सुभाषचन्द्र बोस, जय प्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया आदि नेताओं के स्फूर्ति केन्द्र छात्र ही थे। 1942 का भारत छोड़ो आन्दोलन भी छात्रों की प्रभावी उपस्थिति के कारण प्राणवन्त और प्रभावशाली बना। हालांकि इस समय भी छात्र आन्दोलनों को लेकर दो तरह की सोच थी एक यह कि छात्र पूरी तरह केवल पढ़ाई करे और बाद में राष्ट्रीय समस्याओं व राष्ट्रीय विकास में योगदान दें। दूसरी यह कि हर बड़े कार्य में देश के सभी वर्गों की साझेदारी हो। और इसमें छात्र भी सम्मलित हों।

देश के स्वतंत्रता आन्दोलन के इतिहास को सरसरी तौर पर जानने वालों को भी यह ज्ञान है कि स्वतंत्रता संग्राम में छात्रों की क्या भूमिका रही? अपने देश के लिए संघर्ष करने यहां तक कि प्राण देने में भी छात्र कभी पीछे नहीं रहे। उनका आन्दोलनों में कूदना कभी-भी अनुशासन हीनता, अपरिपक्वता को नहीं दर्शाता। वरन् एक सुविचारित सोच, कठोर अनुशासन और आदर्श को हमारे सामने रखता है।

दुर्भाग्य से स्वतंत्रता के बाद हमारे नेताओं ने छात्रों से कहा कि देश के लिए उनकी भूमिका समाप्त हो गई है। वे अपनी पढ़ाई करें और अपना कैरियर देखें। परिणामत: देश को बनाने और संवारने के लिए तैयार जोशीले, नि:स्वार्थी, आदर्श से भरे हुए, कठोर परिश्रम से पीछे न हटने वाले छात्रों का समूह गहरी निराशा में चला गया। और राष्ट्र निर्माण में अपनी भूमिका के प्रति दिग्भ्रमित हो गया। इसी समय देश के प्रबुद्ध राष्ट्रवादी प्राध्यापकों और छात्रों ने राष्ट्र निर्माण में अपनी सशक्त भूमिका के निर्वहन के लिए विचार-विमर्श शुरू किया। और देशभर के निराश,

लक्ष्यहीन छात्रों को राष्ट्र निर्माण के कार्य में लगाने के लिए '9 जुलाई सन् 1949' को 'अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद्' की स्थापना की। इतिहास साक्षी है कि तब से लेकर अब तक संविधान में देश का नाम इंडिया की जगह भारत लिखा जाए। शिक्षा का ढांचा पूरी तरह भारतीय हो के आन्दोलन से लेकर गुजरात का प्रसिद्ध छात्र आन्दोलन, बिहार आन्दोलन से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद का सबसे बड़ा छात्र आन्दोलन जिसमें विद्यार्थी परिषद् के छात्र नेताओं के आह्वान पर जयप्रकाश नारायण ने उसका नेतृत्व स्वीकार किया फलत: देश एक तानाशाह को सबक दे सका।

छात्र आन्दोलन के समर्थन में ऐसे तमाम प्रसंगों से इतिहास भरा पड़ा है जिसमें छात्रों ने अपने कैरियर की चिन्तन करते हुए देश के निर्माण में अपना अप्रतिम योगदान दिया।

अब सवाल यह है कि देश में सब कुछ ठीक हो गया है? या छात्र अब इस लायक नहीं रहा कि वह देश के विकास में अपना योगदान दे सके? क्या इस देश से भ्रष्टाचार का समूल नाश हो गया है? जिसके विरुद्ध छात्र असन्तोष पनपता है। क्या भारत में भारत के लिए भारतीय शिक्षा प्रणाली लागू हो गई है। क्या छात्रों को प्रोफेशनल कॉलेजों में बिना डोनेशन के प्रवेश मिल रहा है? उस पर भी उन्हें वहां अपेक्षित सभी सुविधाएं दी जा रही हैं या वर्षभर किसी न किसी बहाने पैसा उगाही का हथियार बना रखा है। देश में नैतिक पतन अपने चरम पर है। विद्यार्थियों के लिए आवश्यक समझा जाने वाला घी, दूध यूरिया से बनाया जा रहा है। सब्जियों में हानिकारक रसायन से कलर किया जा रहा है। फल हानिकारक रसायन से अखाद्य हो चुके हैं। नौकरी पाने के लिए मोटा पैसा रिश्वत के रूप में दिया जा रहा है।

पढ़ाई के लिए जरूरी बिजली दिन में छ: या आठ घण्टे शहरों में और गांवों में पूरे सप्ताह में पांच-छह घंटे आती है। एन.जी.ओ. अधिकांशत: भ्रष्ट हैं या कुछ निजी स्वार्थ की राजनीति में लिप्त है। और इन सबके विरुद्ध कौन सी संस्था है जो आवाज उठा रही है। क्या इन सबको नियति के भरोसे छोड़ दिया जाए।

शिक्षा में सुधार के लिए तरह-तरह की कमेटियां बनाई गईं। 1948-49 में राधाकृष्णन कमेटी। 1952-53 में मुदालियार कमेटी। 1964-66 में कोठारी कमीशन। परन्तु सरकार ने अपने ही द्वारा गठित कमेटियों की महत्वपूर्ण सिफारिशों को लागू नहीं किया। छात्र संघों के लिए बनी लिंगदोह कमेटी भी छात्रों के अधिकारों को सीमित ही करती है। छात्रों के लिए अप्रत्यक्ष चुनाव का सुझाव लोकतांत्रिक प्रक्रिया पर कुठाराघात है। हजारों छात्रों द्वारा अपने प्रतिनिधि के रूप में चुने गए छात्र नेताओं को परिसर से बाहरी छात्र नेता बताकर उसकी अनदेखी करना लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व प्रक्रिया की उपेक्षा तो है ही यह स्थिति छात्र आन्दोलनों को कुंद करने की साजिश की तरफ भी इशारा करती है।

वस्तुत: आज के समय में ही छात्र आन्दोलन की आवश्यकता सर्वाधिक है। यह आवश्यकता छात्रों के अपने भविष्य और इस तरह देश के सुन्दर भविष्य के लिए ही अधिक है। ध्यान रहे छात्रों के कैरियर को बनाने के लिए कोई और आगे नहीं आयेगा। स्वयं छात्रों को आगे आना होगा। और वे इसमें सक्षम भी हैं। छात्रों के कैरियर के नाम पर उन्हें आन्दोलनों में हिस्सा न लेने के लिए बरगलाने वालों से उन्हें सावधान रहना होगा। मुझे कई ऐसे आन्दोलनों की जानकारी है जहां अगर छात्रों ने अपने बर्बाद होते कैरियर को बचाने के लिए स्वयं लम्बे संघर्ष का सूत्रपात न किया होता तो उनका भविष्य अंधकारमय था। उनकी बात को कोई दूसरी संस्था उठाने वाली नहीं थी। इसी तरह राष्ट्रीय एवं सामाजिक विषयों में भी उन्हें अपनी ऊर्जा लगानी होगी। यह ऐसे ही होगा जैसे कि जिस जहाज से हमें पार उतरना हैं उनके छिद्र ठीक कर रहे हों। तभी तो जब हम पढ़कर निकलेंगे तो हमें अपनी मंजिल तक ले जाने वाला जहाज हमें तैयार मिलेगा। हमारा जहाज तो हमारा अपना स्वस्थ सुगठित, समृद्ध देश ही है।

भारत इस समय सर्वाधिक युवा शक्ति वाला देश है। पर इस अथाह शक्ति को राष्ट्र निर्माण में लगाने के लिए हमारी सरकार के पास कोई एजेंडा नहीं है। छात्रों को सही शिक्षा मिले, निर्बाध शिक्षा के लिए सभी सुविधाएं मिले और शिक्षा के बाद उसकी उपयोगिता के लिए रोजगार के अवसर मिलें। इसका कोई विचार हमारी सरकार नहीं कर रही। इस स्थिति में एक बार फिर पूरी शक्ति और एक जुटता से छात्र युवा समुदाय को ही विचार करना पड़ेगा। देश की भयानक होती जा रही समस्याओं के प्रति आत्मघाती उदासीनता को तोड़ना होगा और एक बार फिर लम्बे और प्रभावशाली छात्र आन्दोलन को पूरे देश में हर छोटी-बड़ी समस्या को उखाड़ फेंकने हेतु फैलाना होगा। छात्र आन्दोलन का व्यापक विस्फोट ही बहरी हो रही सरकार के कान खोल सकेगा। तभी छात्र का भविष्य बनेगा और देश का भी।

(लेखक शंभु दयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय (गाजियाबाद) में प्राध्यापक हैं)

क्या मिल पाएगी छात्र राजनीति को नई दिशा

■ रवि त्रिपाठी

किसी भी देश का विकास तभी संभव है जब वहां की जनता जागरूक हो। बात अगर दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र की हो, तो यह और भी जरूरी हो जाता है। लेकिन, यहां ऐसा नहीं हो पा रहा क्योंकि आज भी देश में अशिक्षा और गरीबी व्याप्त है। ऐसे में, व्यापक स्तर पर यदि कोई जागरूकता की लहर पैदा कर सकता है तो वह कालेजों-विश्वविद्यालयों में पढ़ रहा युवा वर्ग है, जो न केवल शिक्षा के इन मठों में मिल रहे ज्ञान को आत्मसात कर सकता है, बल्कि लोगों के बीच भी इसका प्रचार-प्रसार कर सकता है, बशर्ते वह खुद कभी राह न भटके। यहां यह कहना इसलिए जरूरी हो जाता है क्योंकि पिछले कुछ दशकों में छात्र राजनीति ने न केवल कई उतार-चढ़ाव देखे हैं, बल्कि छात्र राजनीति के मुद्दे पर सर्वोच्च न्यायालय की दखल और लिंगदोह समिति के गठन व सिफारिशें आने के बाद, आज स्वयं छात्र राजनीति को ही संदेह की दृष्टि से देखा जा रहा है। ऐसे में, कटघरे में खड़ी छात्र राजनीति का विश्लेषण निश्चय ही आवश्यक हो जाता है।

ऐसा नहीं है कि यहां हम कोई नई बात कर रहे हैं, छात्र राजनीति के जरिये आम लोगों को मुख्यधारा से जोड़ने की परंपरा हमारे यहां आजादी से पहले की है। छात्रों में राजनैतिक समझ ही थी, जिसने आजादी के यज्ञ में होम का काम किया। डोरेंजियो से लेकर भगत सिंह, सभी कहीं न कहीं इसी कौम का हिस्सा रहे हैं। आजादी मिलने के बाद भी यह लौ थमी न थी और जब कभी भी देश में किसी भी तरह की उथल-पुथल मची, छात्र राजनीति से जन्मे आंदोलन उन्हें शांत करने में अहम भूमिका निभाते नजर आए। आजादी की अलख जगाने से लेकर, आदर्शवाद और आंदोलनों में पलती राजनीति ने देश को कई राजनेता दिए। वह चाहे सती के विरुद्ध व विधवा विवाह के समर्थन में ईश्वर चंद विद्यासागर का 17वीं सदी का आंदोलन रहा हो, या 1882 में शुरू हुआ, थियोसोफिकल सोसायटी का वसुधैव कुटुंबकम अभियान, इन सबसे लेकर विदेशी बायकाट, स्वदेशी और गांधी के तमाम अभियानों की सफलता निश्चित तौर पर छात्र सहयोग से ही संभव हो पाई। सन् 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में हजारों-लाखों छात्रों ने देश की आजादी को ही अपना भविष्य समझा और अपने इसी विश्वास के दम पर आजादी ले भी ली।

स्वतंत्रता उपरांत भी जब-तब, देश और समाज के लिए कुछ कर गुजरने का दमखम रखने वाले छात्र जब राजनीति में आए तो राज्य व केंद्र सरकारों को भी अपनी नीतियों में बदलाव करने पड़े। वर्ष 1959 में, लखनऊ विश्वविद्यालय के छात्रों ने जब भ्रष्टाचार और जातिवाद के खिलाफ मोर्चा उठाया तो परिणामस्वरूप, राज्य सरकार को इस संबंध में जांच समिति बैठानी पड़ी। सन् 1968-71 के दौरान, पश्चिम बंगाल के छात्रों का अभियान लगातार जारी रहा। इस अभियान के जरिये न केवल पाकिस्तानी जेल से शेख मुजीबुर्रहमान की रिहाई की मांग उठती रही, बल्कि स्वतंत्र

वर्ष 1959 में, लखनऊ विश्वविद्यालय के छात्रों ने जब भ्रष्टाचार और जातिवाद के खिलाफ मोर्चा उठाया तो परिणामस्वरूप, राज्य सरकार को इस संबंध में जांच समिति बैठानी पड़ी। सन् 1968-71 के दौरान, पश्चिम बंगाल के छात्रों का अभियान लगातार जारी रहा। इस अभियान के जरिये न केवल पाकिस्तानी जेल से शेख मुजीबुर्रहमान की रिहाई की मांग उठती रही, बल्कि स्वतंत्र बंगलादेश के मुद्दे पर विश्व भर के बुद्धिजीवी और आमजन इन छात्रों के साथ खड़े नजर आए।

बंगलादेश के मुद्दे पर विश्व भर के बुद्धिजीवी और आमजन इन छात्रों के साथ खड़े नजर आए। इसी तरह, देश में आपातकाल के दौरान, छात्र नेताओं ने तत्कालीन सरकार के तानाशाही रवैये का जो मुंहतोड़ जवाब दिया, उसे फिर से बयां करने की शायद ही कोई आवश्यकता हो। जय प्रकाश नारायण के साथ-साथ उस पीढ़ी के तमाम युवा नेता उस समय के सरोकारों के प्रति कितने गंभीर और निष्ठावान थे, इसे किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।

इस दौर ने देश को तमाम ऐसे नेता दिये, जो देश के प्रति निष्ठावान, अपने काम के प्रति ईमानदार, समाज के प्रति जिम्मेदार और चुनौतियों के प्रति जुझारू तो थे ही, छात्र राजनीति ने उन्हें अनोखी समझ, दूरदर्शिता और परिपक्वता भी दी थी। स्वर्गीय चंद्रशेखर, स्वर्गीय विश्वनाथ प्रताप सिंह जैसे तमाम नेता इसी कौम का हिस्सा रहे। वर्तमान में, अरुण जेटली भी छात्र राजनीति और आपातकालीन आंदोलन से ही मुख्य राजनीति में शामिल होते हैं। इसमें कोई दोराय नहीं कि छात्र राजनीति ने हमें ऐसे नेता दिये हैं, जिनकी दूरदृष्टि के सुखद परिणाम हमें आज के विकास के रूप में दिखाई दे रहे हैं। लेकिन पिछले कुछ दो-एक दशकों में छात्र राजनीति एक नया मोड़ लेती दिखाई दे रही है और दुर्भाग्यवश ये नया बदलाव बहुत सकारात्मक नहीं दिख रहा।

देश के राजनैतिक पटल पर देखें तो, संसद में बैठे अशिक्षित नेताओं की करनी और उनके गलत नतीजों का लाख रोना रोने के बावजूद, हमें शिक्षित नेताओं का अभाव ही हाथ लग रहा है। वजह साफ है, इक्के-दुक्के शिक्षितों के अलावा, पढ़े-लिखे युवक राजनीति को कोयले की दलाली ही समझते हैं और इसमें शामिल होने से कतराते हैं। यहां तक कि वे छात्र राजनीति में शामिल होने से भी डरते हैं। अफसोस इस बात का भी है कि आज का परिवेश उनकी इस समझ को ही प्रगाढ़ कर रहा है। कालेजों में पढ़ रहे जो युवा छात्र राजनीति का हिस्सा बन रहे हैं, उनमें से ज्यादातर सत्ता की चमक और छोटी उम्र में रुतबा व अधिक से अधिक धन कमाने के शॉर्टकट के रूप में इसे देख रहे हैं। ऐसे में, राजनीति में शामिल शिक्षित लोगों और अशिक्षितों में फर्क करना लगभग असंभव ही है, पार्टियों की न अपनी कोई विचारधारा है और न ही नेता व्यक्तिगत तौर पर उसूलों पर चलने का सुदृढ़ निर्णय लेते दिखाई देते है। आज की राजनीति सरोकारों से परे, केवल सत्ता की राजनीति बनकर रह गई है और यह न केवल ऊपरी तौर पर दिखाई देता है बल्कि निचले स्तर पर भी खूब भली-भांति देखा जा सकता है। आज की छात्र राजनीति इसका उदाहरण है। पिछले कुछ समय से छात्र राजनेता जीत के लिए हर तरह के हथकंडे अपनाते दिखाई देते हैं। साम-दाम-दंड-भेद यहां सब कुछ एक साथ देखा जा सकता है। छात्र नेताओं में परिपक्वता, गंभीरता और समाज के प्रति निष्ठा, ये सब गुजरे जमाने के शब्द से जान पड़ते हैं। कहीं सुना था कि आज का युवा जीवन में रफ्तार चाहता है, छात्रों का प्रतिनिधित्व कर रहे छात्र नेता भी इसका शिकार हैं।

छात्र राजनीति के जरिये आम लोगों को मुख्यधारा से जोड़ने की परंपरा हमारे यहां आजादी से पहले की है। छात्रों में राजनैतिक समझ ही थी, जिसने आजादी के यज्ञ में होम का काम किया। डोरेजियो से लेकर भगत सिंह, सभी कहीं न कहीं इसी कौम का हिस्सा रहे हैं। आजादी मिलने के बाद भी यह लौ थमी न थी और जब कभी भी देश में किसी भी तरह की उथल-पुथल मची, छात्र राजनीति से जन्मे आंदोलन उन्हें शांत करने में अहम भूमिका निभाते नजर आए।

पिछले कुछ समय से देखा जा रहा था कि कालेजों में प्रवेश से लेकर, अन्य मुद्दों पर अपनी मनमानी करवाना और यदि अपनी न चले तो तोड़फोड़ व मारपीट करना ही जैसे छात्र राजनीति का दूसरा नाम हो गया था। यहां तक कि बुद्धिजीवियों का गढ़ माने जाने वाले जेएनयू में भी छात्रसंघ चुनावों के दौरान होने वाली प्रेजिडेंशियल डिबेट का स्तर लगातार गिरता देखा गया। अब तो छात्रों में डिबेट के दौरान हाथापाई भी आम हो चली है। यूपी में छात्र राजनीति के नाम पर कत्लेआम से भी लोग परहेज नहीं करते। शायद यही वजह रही कि अप्रैल 2006 के विधानसभा चुनावों में जीतने के बाद, मायावती ने राज्य में छात्रसंघों पर पाबंदी लगाने का फरमान जारी कर दिया। और उसी दिन उच्चतम न्यायालय ने भी छात्रसंघों के लिए प्रतिकूल टिप्पणी की। जस्टिस अरिजित पसायत का कहना था कि विश्वविद्यालय व कालेजों में पढ़ने वाले छात्र महज पार्टटाइम छात्र और फुलटाइम नेता हो गए हैं।

छात्रसंघों पर पाबंदी का फैसला भले ही तानाशाही का द्योतक हो, लेकिन छात्र राजनीति का मुद्दा उच्चतम न्यायालय में आने का कम-से-कम एक फायदा तो जरूर मिला, छात्र राजनीति को नजरअंदाज करने वालों के बीच भी यह मुद्दा चर्चा का विषय बना और हो न हो उसके कुछ अच्छे परिणाम भी सामने आए।

लिंगदोह समिति की सिफारिश से यह साफ हो गया कि छात्रसंघों का गठन विश्वविद्यालयों व छात्रों के विकास के लिए आवश्यक और लोकतंत्र की सेहत के लिए अनिवार्य है। हालांकि समिति की सिफारिश पर बहुत से लोग नाखुश दिखाई दे रहे हैं, लेकिन यदि इन सिफारिशों पर गंभीरता से सोचा जाए तो इनमें कुछ भी गलत नजर नहीं आता।

कुछ लोगों का मानना है कि लिंगदोह समिति की, छात्र संगठनों व राजनैतिक पार्टियों के गठजोड़ को लेकर की गई नकारात्मक सिफारिश बेमानी है क्योंकि विचारधारा के निर्वहन के लिए पार्टी का दिशानिर्देश होना जरूरी है लेकिन पार्टियां किस प्रकार अपनी लीक पर चलती हैं यह हमने देख ही लिया है। जो कांग्रेस अपनी सत्ता जमाने के लिए उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी की आलोचना में कोई कसर नहीं छोड़ती, वही मौका पड़ने पर, मायावती से गठजोड़ करने को भी तैयार रहती है। कुछ ऐसा ही हाल तथाकथित सोशलिस्ट और कम्युनिस्टों का भी है। बल्कि उनकी विचारधारा का अहसास तो हमें द्वितीय विश्वयुद्ध के समय से ही है, जब ब्रिटेन और रूस की दोस्ती को देख, सोशलिस्टों ने यहां तक कहना शुरू कर दिया था कि गोरे हमारे दुश्मन नहीं हैं।

यहां लिंगदोह समिति की रिपोर्ट को एक बार फिर से ध्यान से देख लेना जरूरी होगा। दरअसल, इस रिपोर्ट में 1981 में विश्वविद्यालय अनुदान केंद्र (यूजीसी) समिति का जिक्र मिलता है, जिसका मजमून कुछ इस प्रकार है, 'शिक्षक व छात्रों का एक वर्ग केवल मतदाता ही नहीं हैं, वरन् स्थानीय, राज्यीय व संसद के भावी उम्मीदवार भी हैं। अतः हम इसमें कोई बुराई नहीं देखते कि राजनैतिक पार्टियां हमारे विश्वविद्यालयों के परिसरों में सक्रिय हों। राष्ट्रीय विकास के पहलुओं, योजनाओं व विभिन्न विचारधाराओं के बारे में विमर्श स्वागत योग्य है और इस प्रकार की राजनैतिक गतिविधियां विश्वविद्यालयों के विकास की द्योतक हैं। लेकिन, हमें यह कहते हुए बहुत दुख होता है कि परिसरों में हम जिस प्रकार की राजनैतिक गतिविधियां देख रहें हैं, वे अपने स्वरूप में अत्यंत दयनीय दिखाई देती हैं और उनसे राजनीति का नाम खराब होता है।'

यदि इस एक सिफारिश के अलावा, अन्य सिफारिशों की बात की जाए, तो उनमें भी कोई बुराई नहीं बल्कि समानता व पारदर्शिता का ही अधिक भाव दिखता है। मसलन, चुनाव के खर्च की अधिकतम राशि 5000 रुपये तय की गई है। इसे यदि सकारात्मक रूप से देखा जाए, तो इससे फायदा यह होगा कि एक मध्यम परिवार से आने वाला युवा, जो राजनीति की समझ और समाज के प्रति सरोकार का भाव रखता है, वह भी छात्र राजनीति में शामिल हो सकेगा। इसी तरह, खर्च का ब्यौरा देने पर तमाम छात्रों के बीच यह संदेश जाएगा कि उन्होंने अपने लिए जिन प्रतिनिधियों का चुनाव किया है, वे उनके प्रति वाकई जिम्मेदार हैं। अंततः लिंगदोह, समिति की जो सिफारिश छात्र राजनीति में बढ़ते आपराधीकरण की रोकथाम की बात करती है, उससे किसी को भी विरोध नहीं होना चाहिए क्योंकि हम सभी यह अच्छी तरह जानते हैं कि आपराधीकरण का रोग किस तरह छात्र राजनीति को खा रहा है और यदि अब भी इसे न रोका गया तो यह जल्द ही नासूर में बदल सकता है।

छात्र राजनीति को जो शक्ल देंगे, उसी का व्यापक आकार हमें देश की राजनीति के रूप में दिखाई देगा। आज जब देश की राजनीति में हर तरह की विकृतियां शामिल हो चुकी हैं, तो जरूरी है कि हम निचले स्तर से ऐसे बदलावों की शुरुआत करें, जो ऊपरी स्तर पर स्वतः ही फैल जाएं। जाहिर है, यह काम छात्र नेताओं की पहल और इस दिशा में उनके सकारात्मक रवैये से ही शुरू होगा क्योंकि देश की राजनीति की असली जड़ें तो वे ही हैं।

निष्कर्ष के तौर पर, छात्र राजनीति को देश की राजनीति के झरोखे के रूप में देखा जा सकता है। हम छात्र राजनीति को जो शक्ल देंगे, उसी का व्यापक आकार हमें देश की राजनीति के रूप में दिखाई देगा। आज जब देश की राजनीति में हर तरह की विकृतियां शामिल हो चुकी हैं, तो जरूरी है कि हम निचले स्तर से ऐसे बदलावों की शुरुआत करें, जो ऊपरी स्तर पर स्वतः ही फैल जाएं। जाहिर है, यह काम छात्र नेताओं की पहल और इस दिशा में उनके सकारात्मक रवैये से ही शुरू होगा क्योंकि देश की राजनीति की असली जड़ें तो वे ही हैं।

(लेखक ज़ी न्यूज़ में प्रिंसिपल कॉरेस्पोंडेंट हैं)

लोकतांत्रिक व्यवस्था और छात्र आन्दोलन की प्रासंगिकता

■ देवेन्द्र शर्मा

किसी भी समाज की जीवन्तता उस समाज की आंदोलनधर्मिता पर भी निर्भर करती है। आन्दोलन सामान्यत: सत्ता और समाज के सम्बंधों के विवादित बिन्दुओं पर समाज की सहज प्रतिक्रिया भी है, अत: आन्दोलन की प्रासंगिकता और उपादेयता पर प्रश्न यदि वो समाज उठाने लगे, चर्चा करने लगे तो ये उस समाज के लिए चिन्ता का विषय है। हमारे सामाजिक ताने-बाने में यूं तो सामाजिक-धार्मिक बिन्दुओं पर चर्चा के कई मंच उपलब्ध रहे हैं जो सामाजिक-धार्मिक विषयों की निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करते है परन्तु राजनैतिक चर्चा कुछ विशिष्ट मंचों तक सीमित रहती है। स्वतंत्रता के पश्चात् तत्कालीन नेतृत्व ने ब्रिटिश संसदीय व्यवस्था और औपनिवेशिक संवैधानिक व्यवस्था को अपनाया। इस व्यवस्था में समाज को प्रभावित करने वाले निर्णयों में जन-सहभाग की कोई व्यवस्था नहीं है, पांच वर्षों तक समाज को अपना भविष्य गिरवी रख देना पड़ता है। संसदीय व्यवस्था की विफलता या उसकी सरकार, सत्ता के सामने असहायता कानूनी प्रावधानों के चलते स्पष्ट दिखाई देती है। शासन, सत्ता की संवेदनहीनता, नेतृत्व के आम आदमी के सरोकारों से आखें मूंद लेने के कारण स्वतंत्रता के गत 6 दशकों में ऐसे सैकड़ों अप्रिय अवसर आये जहां संसदीय व्यवस्था, राजनैतिक मंचों की विफलता ने आम आदमी को विवश कर दिया कि वो आन्दोलन का मार्ग चुने। तक्षशिला के आचार्य चाणक्य के नेतृत्व से लेकर स्वतंत्रता संघर्ष में छात्रों ने अग्रणी भूमिका निभायी और राष्ट्र-समाज के जीवन की सुरक्षा को संबल प्रदान किया।

हमारी संवैधानिक व्यवस्था हमारे देश को लोकतंत्र घोषित करती है। हमें संगठन बनाने का अधिकार है, हमें विचार व्यक्त करने का अधिकार है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में दबाव समूहों का विशेष स्थान होता है। इन दबाव समूहों के पास आंदोलन एक महत्वपूर्ण उपादान है। गो-हत्या, आपातकाल, राम-जन्मभूमि आदि उदाहरण हमारे पास है, फिर ये प्रश्न कहां से आया कि आन्दोलन की प्रासंगिकता और विशेष रूप से छात्र आन्दोलन की प्रासंगिकता क्या है?

सन् 1972 से 1992 तक भारत ने तीन बड़े जन-आन्दोलन देखे, आपातकाल के समय सम्पूर्ण क्रांति, बोफोर्स घोटाले को लेकर जन-मोर्चा और श्री राम जन्मभूमि आन्दोलन, इसके अतिरिक्त आरक्षण को लेकर भी समर्थन व विरोध आन्दोलन। इन सभी आन्दोलनों को मिले जन-समर्थन ने शासन सत्ता की जड़ें हिला दी। ये बात और है कि ये सभी आन्दोलन अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में लगभग असफल रहे।

सन् 1972 से 1992 तक भारत ने तीन बड़े जन-आन्दोलन देखे, आपातकाल के समय सम्पूर्ण क्रांति, बोफोर्स घोटाले को लेकर जन-मोर्चा और श्री राम जन्मभूमि आन्दोलन, इसके अतिरिक्त आरक्षण को लेकर भी समर्थन व विरोध आन्दोलन। इन सभी आन्दोलनों को मिले जन-समर्थन ने शासन सत्ता की जड़ें हिला दी। ये बात और है कि ये सभी आन्दोलन अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में लगभग असफल रहे।

नब्बे के दशक के आरम्भ में भूमंडलीकरण और वैश्वीकरण की नीति को बिना किसी जन-बहस के स्वीकार कर लिया गया और भारत को बाजार बनाने के सभी नीतिगत निर्णय एक अल्पमत सरकार ने ले लिये जिसने संसद में बहुमत रिश्वत देकर खरीदा हुआ था। हमारी समाज रचना में अल्पकालिक और दीर्घकालिक प्रभाव डालने वाले निर्णय लिये जाते रहे।

पश्चिमी बाजार की अपनी विशेषता है, वो किसी भी

तरह का हस्तक्षेप स्वीकार नहीं करता है। हमारे समाज की सहज विशेषता है कि वो बिना प्रश्न किये कुछ स्वीकार करता नहीं है। ये अन्तर्विरोध पश्चिमी बाजार के रणनीतिकार अच्छी तरह समझते थे। वो ये जानते थे कि भारतीय जन-मानस इन नीतियों को स्वीकार नहीं करेगा और यदि आन्दोलन होता है तो अनिश्चितता होगी, अनिश्चितता होगी तो बाजार पर प्रभाव पड़ेगा, बाजार पर प्रभाव पड़ेगा तो लाभ पर प्रभाव पड़ेगा, आंदोलन परिणामकारी हुआ तो उनके अरबों डालर के निवेश और विश्व के सबसे बड़े बाजार का क्या होगा? इसलिए आंदोलनधर्मिता को बदनाम करने की सुनियोजित नीति के तहत 'सिविल सोसायटी' के नाम पर विभिन्न संस्थायें भुमंडलीकरण और वैश्वीकरण के साथ पनपनी शुरू हुई। जो 'रुल ऑफ लॉ' के नाम पर 'वेस्टर्न-डेमोक्रेटिक सेन्स' को प्रचारित करने लगी हैं। संवैधानिक व्यवस्थाओं, कानून, नियमों, न्यायालयों के निर्णयों को अत्यंत पवित्र घोषित करने की होड़ ये 'सिविल सोसायटी' के नाम पर विभिन्न संस्थायें लगाती हैं। चाहे इन संवैधानिक व्यवस्थाओं, कानून, नियमों, न्यायालयों के निर्णयों से आम आदमी जो व्यवस्था के अंतिम पायदान पर पड़ा है उसको कितना भी नुकसान क्यों ना हो। सरकार ने भी इन 'सिविल सोसायटी' संस्थाओं की भूमिका का बढ़ा-चढ़ा कर स्वागत किया।

मीडिया जो अब पश्चिमी बाजार के हाथों खरीद लिया गया था, जो विज्ञापन से अर्जित आय के लिए भी विदेशी कम्पनियों के डालरों पे आंखें बिछाये बैठा था उसने निरंतर ऐसा वातावरण तैयार करना आरंभ कर दिया कि आंदोलनकारी असामाजिक तत्व होते है, वे देश को आर्थिक नुकसान पहुंचाते हैं। हड़ताल-घेराव, धरना, प्रदर्शन आदि से लोगों को परेशानी होती है। पश्चिमी बाजार हितों के संरक्षक मीडिया ने आंदोलनकारियों को अपराधी की तरह प्रस्तुत करना आरंभ कर दिया। एक बड़ा वर्ग जो मीडिया से प्रभावित होता है इन सभी को स्वीकार भी करने लगा। इस सबका एक परिणाम ये भी है कि हम आज आन्दोलन की प्रासंगिकता और उपादेयता पर प्रश्न कर रहे हैं। इन सभी परिवर्तनों में जिसकी उपेक्षा हुई वो था आम आदमी जो व्यवस्था के अंतिम पायदान पर खड़ा है संसदीय व्यवस्था में उसके हितों के संरक्षण की पहले भी व्यवस्था नहीं थी, शासन, सत्ता की संवेदनहीनता से विरोध करने का पहले एक उपाय था कि वो आंदोलन, हड़ताल-घेराव, धरना, प्रदर्शन आदि माध्यमों से अपनी व्यथा शासन, सत्ता तक पहुंचाये और उन्हें जन-विरोधी नीतियों को बदलने के लिए बाध्य करे पर अब उसके पास कोई उपाय भी नहीं है क्योंकि आन्दोलन करना अब अपराधियों का काम है इस आंदोलन-विरोधी मानस का परिणाम अब स्पष्ट दिखने लगा है।

संसद में ऐसे कानूनों की चर्चा होने लगी है जो आंदोलन पर रोक लगाने की बात करने लगे है। समाज के संभ्रात वर्ग के लोग आंदोलनकारी असामाजिक तत्व होते हैं वो देश को आर्थिक नुकसान पहुंचाते हैं ऐसा कहने लगे हैं। यहां तक कि अब तो सर्वोच्च न्यायालय ने भी आंदोलन, हड़ताल, घेराव, धरना, प्रदर्शन आदि को असंवैधानिक घोषित कर दिया है। यह एक महत्वपूर्ण निर्णय है, भारत का संविधान लोकतंत्र को संविधान के मूल ढ़ाचे में स्वीकार करता है, लोकतांत्रिक व्यवस्था की अपनी स्वीकृत पद्धति है, आन्दोलन, हड़ताल-घेराव, धरना प्रदर्शन आदि विश्व के सभी देशों में स्वीकार्य हैं, फिर हमारे देश में गैर-कानूनी क्यों? न्यायमूर्ति चिनप्पा रेड्डी ने (1970 एलआईसी 1225) में अपने आदेश में लोर्ड डेन्निंग मोर्गन बनाम फ्राइ (1968 II। डब्ल्यू एल आर 506 पृ.सं. 516) को उद्धृत करते हुए कहा था कि गत 100 वर्षों में हड़ताल सर्वाधिक महत्वपूर्ण अस्त्र के रूप में विकसित हुआ है। यह एक मौलिक और अविभाज्य अधिकार है जो लिया नहीं जा सकता। परन्तु आज स्थितियां बदल चुकी हैं। क्या हम ये मान लें कि गत लगभग दो दशकों में भूमंडलीकरण और वैश्वीकरण के द्वारा प्रायोजित आंदोलन-विरोधी मानस का परिणाम अब सामने है? पर क्या न्यायालय के आदेशों से या सरकारी नीतियों से समाज की स्थितियां बदल जाती है क्या लोकतांत्रिक व्यवस्था में या किसी भी प्रकार की व्यवस्था में जनता से उसके नैसर्गिक मौलिक और अविभाज्यकारी अधिकार लिये जा सकते है जबकि शासन सत्ता समाज के सरोकारों के प्रति संवेदनहीन हो गया हो, एक के बाद एक जन-विरोधी निर्णयों की सौगात दे रहे हो। शिक्षा, स्वास्थ्य और न्याय जैसी मूलभूत मानवीय आवश्यकताओं को भी उससे दूर किया जा रहा है। बिना राष्ट्रीय बहस के निरंतर ऐसे निर्णय लिये जा रहे हैं जो समाज की मूल रचना पर कुठाराघात कर रहे हों, संसद में सुनवाई नहीं, न्यायालयों की लम्बी खर्चीली और अपरिणामकारी व्यवस्था, पूंजीपतियों की भाषा बोलता मीडिया, छात्रों ने सदैव ऐसे समय में नेतृत्व प्रदान किया है ऐसे में छात्र आन्दोलन की प्रासंगिकता और अधिक बढ़ जाती है।*(लेखक सर्वोच्च न्यायालय में अधिवक्ता हैं)*

आन्दोलन तो युवा छात्र की रगों में दौड़ता है

■ रजनीश अग्रवाल

गुजरात के मोरवी इंजीनियरिंग महाविद्यालय में जब 1973-74 में मैस की फीस बढ़ा दी गई तो गुस्साया छात्र समुदाय आंदोलन पर उतारू हो गया और यही आंदोलन पूरे गुजरात में 'रोटी रमखांण' में बदल गया। गुजरात नवनिर्माण आंदोलन के नाम से चली छात्र शक्ति ने तत्कालीन भ्रष्ट सरकार को ही बदल दिया। इस आंदोलन की हवा में बिहार में भी छात्र आंदोलन चल पड़ा जो जन आंदोलन बन गया। लोकनायक बाबू जय प्रकाश नारायण ने इस आंदोलन को नेतृत्व दिया। श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा लगाये गये आपात्काल में यह प्रभावी छात्र आंदोलन रहा। समग्र क्रांति और व्यवस्था परिवर्तन के नारों पर छात्रों ने सारे समाज में हलचल पैदा कर दी थी। सैकड़ों छात्र 'यह दीवाने कहां चले-जेल चले भाई जेल चले' नारों के बीच भगत सिंह और आजाद नजर आते थे। इस आंदोलन में समाज की राष्ट्रीय भावना अभिव्यक्त हुई थी। 1980 में चला असाम आंदोलन विदेशी घुसपैठ के विरूद्ध छात्रशक्ति की ललकार था। इस गरिमामय आंदोलन में छात्र संघों से लेकर शिक्षकों के संघ, कई युवा संगठन, असम साहित्य सभा तक सहभागी हुए। कुल मिलाकर यह समग्र समाज का आंदोलन बना।

आजादी के बाद भी देश के छात्र समुदाय ने अपने संघर्ष की धार भोंथरी नहीं होने दी। वैज्ञानिक और समाजशास्त्री स्टेण्डमैन जहोन्स ने लिखा है कि पेइचिंग से लेकर बर्लिन तक, चायना और चेकोस्लाविया में, पोलैण्ड और इंडोनेशिया में, दक्षिण अफ्रीका और भारत में, विद्यार्थी अपने देश की राजनीति और प्रशासन के लिए एक चुनौती बने हैं। विद्यार्थी की एक सामूहिक ताकत के कारण दुनिया के सभी देशों की सरकारों को अपने देश की इस छात्रशक्ति से डरना पड़ता है। सन् 1962 से 1977 के बीच इस प्रकार का भाव दुनिया में देखने को मिला।

छात्र आंदोलन का यही इतिहास आज एक अजीब सी अकुलाहट लाता है। क्या कारण है कि शैक्षणिक समस्याएं - बेतहाशा शुल्क वृद्धि, बुनियादी सुविधाओं का अभाव, डिग्रियों के नाम पर भविष्य से खिलवाड़, कुल मिलाकर विद्यार्थियों को ठगने की प्रक्रिया से लेकर समाज और राष्ट्र के प्रश्नों पर छात्र समुदाय उदासीन है? क्या दोहरी शिक्षा प्रणाली पर उसके सवाल नहीं हैं? वह जो पढ़ रहा है उस पर उसे विश्वास नहीं है पर क्या उसके मन में कोई द्वंद्व नहीं है? उसे मिलने वाली डिग्री का औचित्य क्या होगा पता नहीं? बेकारी की विशाल समस्या की जड़ कहां है? दोषी कौन है? यह समस्या नीतिगत है या परिस्थितिजन्य? यह जानने और समझने का उसका क्या प्रयास है? आतंकवाद और नक्सलवाद पर उसकी प्रतिक्रिया क्या है? अब वह क्या सामाजिक कुरीतियों के बारे में विरोध करने के लिए खड़ा हो रहा है? इस वैश्वीकरण और उदारीकरण के दौर में युवा छात्र स्वयं को टटोलने में भले ही असमर्थ साबित हो रहा हो, भले ही वह स्वयं को आर्थिक मोर्चे पर स्थापित करने के लिए लगा हो। लेकिन इन सबके बावजूद भी उसका मूल स्वभाव नहीं बदला। आज भी वह व्यवस्था विरोधी है। विद्यार्थी की प्रवृत्ति कल भी प्रतिक्रियावादी थी आज भी है। आज भी वह सब कुछ बदल देने की ताकत का अहसास रखता है। आज भी वह भ्रष्ट राजनीति के अपराधीकरण और आतंकवाद, नक्सलवाद जैसे विषयों पर मुखर होकर अपनी आवाज देता है। भले ही बड़े पैमाने पर कोई छात्र आंदोलन दिखाई न पड़ता हो पर छात्रों-युवाओं के मन में और रगों में सदा एक आंदोलन दौड़ रहा है। इसे नेतृत्व कौन दे इसे आवाज कौन दे आज प्रश्न यही मौजूं है। वह निराश है। कई बार वह ठगा सा भी महसूस करता है। कथनी और करनी में अंतर को वह जानने लगा है। जिंदाबाद और मुर्दाबाद के बीच की उलझन को वह समझने लगा है।

आज विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय न तो समाज का

बौद्धिक केन्द्र बन पा रहे हैं और न ही समाज को नेतृत्व दे पा रहे हैं। छात्र संघ को अक्सर छात्र आंदोलन और समाज परिवर्तन का कारक माना जाता रहा है। कमोबेश सभी विचारक छात्रसंघ को राजनीति की नर्सरी भी कहते हैं। आज छात्रसंघ पर समाज या सरकारों का समग्र चिंतन और दृष्टि नहीं है। कभी सरकारें अपने बचाव के लिए चुनाव करने या न करने का निर्णय करती हैं तो कभी कालेज और विश्वद्यिालय चुनाव न कराने के लिए अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग करने लगते हैं। सवाल यह है कि क्या लोकतंत्र की दीक्षा वयस्क मताधिकार वाले देश में महाविद्यालय में देना उचित नहीं है? यदि लोकतंत्र को सच्चे मायने में फलीभूत करना है और समाज परिवर्तन के लिए विचारवान और ध्येयवान एक रचनात्मक छात्र आंदोलन को चलाना है तो छात्रसंघ चुनावों के औचित्य को सिद्ध करना ही होगा। भारत के लोकतंत्र की विकृतियां छात्रसंघों पर न पड़े बल्कि छात्रसंघ के चुनाव में वैचारिक संघर्ष, चुनाव की शुचिता और संपूर्णता का प्रभाव ही विधानसभा और लोकसभा तक जाये, इस दृष्टिकोण से छात्रसंघ चुनाव की पद्धति पर विचार करना होगा। आज के परिवेश में यह जरूरी है। प्रत्यक्ष प्रणाली में मतदान करना एकमात्र पूरा अधिकार नहीं है बल्कि वोट करने के पहले संपूर्ण विचार की प्रक्रिया पर प्रशिक्षण होना चाहिये। अन्यथा इसी प्रत्यक्ष प्रणाली में सुंदरता और जाति को मुद्दा बनते हमने देखा है। सरकारों को भी विचार करना होगा कि वह समाज में कैसे नागरिक की अपेक्षा रखती हैं। समाज में विचार, मुद्दों एवं चुनौतियों की जानकारी वयस्क मताधिकार प्राप्त विद्यार्थी को होनी ही चाहिये। छात्रसंघ चुनाव में मुद्दों में उम्मीदवारों के बीच वैचारिक बहस समस्याओं पर स्पष्ट नजरिया और सामाजिक सरोकारों पर छात्रसंघ की भूमिका उजागर करते हुए एक वर्षीय कार्य योजना जैसे विषय शामिल हों। छात्रसंघ चुनाव की पद्धति लोकतंत्र में आ रही विकृतियों को दूर करने का भी माध्यम बनना चाहिये। ऐसे छात्रसंघों से आज का आदर्श नेतृत्व उभरेगा, निखरेगा।

छात्र आंदोलन का मकसद सदा समाज परिवर्तन रहा है। जब-जब छात्र आंदोलन उठेंगें तब-तब उनका यही मकसद होगा। लेकिन बदलते वक्त के चलते आंदोलन के स्वरूपों में अंतर आयेगा। प्रकार में अंतर आयेगा। आंदोलन का तेज और ओज वही होगा अगर स्थान-स्थान पर युवा छात्रों को नेतृत्व चाणक्य और जेपी जैसे व्यक्तित्व का होगा। अब आंदोलन की दिशा राष्ट्र पुनर्निर्माण की होगी। इसमें जो आड़े आयेगा वह ढहता जायेगा। व्यवस्था की सडांध से ग्रसित समाज को भी यही आंदोलन मुक्ति दे सकता है। इस आंदोलन पर राख भले ही दिखाई दे रही हो पर आंच अभी बाकी है।

छात्रों का आदर्श नेतृत्व रहे जेपी के तेवर और उनके नेतृत्व की धाक वैसी ही थी जैसे चाणक्य की। दोनों की ललकार पर छात्र और युवाओं ने लड़ने के लिए मैदान का रास्ता पकड़ लिया था। जेपी आंदोलन की विशेषताओं पर भी गौर करना होगा। उनके आंदोलन की तीन महत्वपूर्ण विशेषताएं थी-एक तो यह कि समग्र क्रांति के आह्वान को लेकर चला आंदोलन पूरी तरह रचनात्मक दृष्टिकोण पर आधारित था। दूसरी विशेषता यह थी कि आंदोलन का ध्येय लोकतंत्र था। लोकतांत्रिक चेतना पर आंदोलन का विश्वास रहा है। लोकतांत्रिक संस्थाओं की मजबूती के रास्ते आंदोलन ने तैयार किये। और जो तीसरी सबसे बड़ी विशेषता थी कि वह दलगत राजनीति से ऊपर उठकर लोकनीति से जन आंदोलन बनाने की चेष्टा की थी। जेपी कहते थे कि नई राजनीति लोकशक्ति के गर्भ से जन्म लेगी। वे कहते थे कि 'अभी हम एक दूरगामी क्रांति की दहलीज पर खड़े हैं। इस देश की आध्यात्मिक विरासत इस प्रकार की क्रांति के लिए पुकार रही है।' इस क्रांति का नेतृत्व कौन करे यह सवाल आज बड़ा है।

छात्र आंदोलन का मकसद सदा समाज परिवर्तन रहा है। जब-जब छात्र आंदोलन उठेंगें तब-तब उनका यही मकसद होगा। लेकिन बदलते वक्त के चलते आंदोलन के स्वरूपों में अंतर आयेगा। प्रकार में अंतर आयेगा। आंदोलन का तेज और ओज वही होगा अगर स्थान-स्थान पर युवा छात्रों को नेतृत्व चाणक्य और जेपी जैसे व्यक्तित्व का होगा। अब आंदोलन की दिशा राष्ट्र पुनर्निर्माण की होगी। इसमें जो आड़े आयेगा वह ढहता जायेगा। व्यवस्था की सडांध से ग्रसित समाज को भी यही आंदोलन मुक्ति दे सकता है। इस आंदोलन पर राख भले ही दिखाई दे रही हो पर आंच अभी बाकी है। *(लेखक मध्य प्रदेश से प्रकाशित पत्रिका चरैवेति के सम्पादक हैं)*

जरूरी है नए तेवर, नए रचनात्मक हथियार

■ आदित्य झा

भारत ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व का इतिहास साक्षी है कि व्यवस्था के संचालन में जब कभी खामियां उत्पन्न हुई हैं और खामियां व्यवस्था को ध्वस्त करती हुई नजर आती हैं तब छात्र आंदोलन ने जन्म लिया है। इस आंदोलन द्वारा व्यवस्था पुन: दुरूस्त होती नजर आती है। चाहे वह देश की आजादी का आंदोलन हो या 1974 का छात्र आंदोलन, जिसे जयप्रकाश नारायण ने सम्पूर्ण क्रांति का नाम दिया था। देश की आजादी के समय भी छात्रों ने जिस प्रकार ईस्ट इंडिया कम्पनी की नींव को हिला कर रख दिया ठीक उसी प्रकार 1974 का छात्र आंदोलन जो कि कॉलेज की मेस व्यवस्था के विरूद्ध आवाज उठाने से शुरू हुआ, ने धीरे-धीरे पूरे देश में कुव्यवस्था के खिलाफ एक व्यापक जन आंदोलन को जन्म दिया। सम्पूर्ण क्रांति आंदोलन के फलस्वरूप ही सत्ता नहीं व्यवस्था परिवर्तन का विचार लोगों के समक्ष प्रस्तुत हुआ। इस आंदोलन के कारण देश के निर्माण में प्रभावी भूमिका निभाने वाले युवा नेताओं की एक लम्बी फेहरिस्त देश को मिली जिन्हें आज हम राजनेताओं के रूप में राष्ट्रीय राजनीति में देखते हैं। चाहे वह युवा तुर्क के नाम से मशहूर रहे पूर्व प्रधानमंत्री स्व. चंद्रशेखर हों या अरुण जेटली, सीताराम येचुरी, लालूप्रसाद यादव, रविशंकर प्रसाद, सुशील मोदी, नीतिश कुमार जैसे अनेकों नाम इसमें शामिल हैं। इस आंदोलन से छात्र आंदोलन पर लगने वाला आरोप कि यह राजनीतिक दलों से प्रेरित होता है अपने आप खारिज हो जाता है क्योंकि व्यवस्था के खिलाफ हुए इस आंदोलन में शामिल सभी लोग विभिन्न छात्र संगठनों के लोग थे जिनके लिए राष्ट्र सर्वोपरि था।

अक्सर छात्र आंदोलन पर एक आरोप लगता है कि आंदोलनों के कारण शैक्षणिक सत्र का भारी नुकसान होता है। यदि हम किसी भी विश्वविद्यालय के शैक्षणिक कैलेंडर को उठा कर देखें तो छात्र आंदोलन की एवज में शिक्षकों की हड़ताल व अन्य कारणों व शिक्षकों के ना आने के कारण शैक्षणिक सत्र का भारी नुकसान होता है। जहां एक ओर छात्र अपनी समस्याओं के समाधान के लिए आवाज उठाते हैं। वहीं दूसरी ओर शिक्षक केवल अपने वेतन एवं भत्तों के लिए। देश को यदि पढ़े-लिखे युवा नेतृत्व और नौजवान नेता चाहिए तो वह विश्वविद्यालय परिसरों से ही मिलेंगे। और नेतृत्व क्षमता के विकास के लिए छात्र आंदोलन में सहभागिता अत्यंत आवश्यक है। छात्र आंदोलन के माध्यम से जहां छात्र में संगठनात्मक गुणों का विकास होता है। कॉलेज की कैंटीन के मुद्दों से लेकर राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर आम राय बनाकर जनमत के रूप में लाने की प्रक्रिया सीखने को मिलती है।

छात्रसंघ चुनावों के माध्यम से जहां छात्रों को मुद्दों का चयन और उन्हें चुनावी समर में उठाने का अनुभव प्राप्त होता है वहीं निर्वाचन व्यवस्था और घोषणा पत्र तैयार करने जैसी चीजें सीखने को मिलती है साथ ही साथ उन्हें चुनावी प्रबंधन और संचालन का भी अनुभव प्राप्त होता है। और इसके साथ ही साथ सम्पूर्ण लोकतांत्रिक प्रक्रिया के संचालन का अनुभव भी मिलता हैं। असम का विदेशी भगाओ आंदोलन इसका साक्षी है। प्रफुल्ल कुमार महंत का छात्र नेता से सीधे राजनेता के रूप में देश से इसी आंदोलन के माध्यम से परिचय हुआ। इस सम्पूर्ण आंदोलन का प्रबंधन व संचालन विश्वविद्यालय छात्रावास से ही संचालित किया गया और श्री महंत ऐसे छात्र नेता रहे हैं जो सीधे छात्रावास से निकल कर मुख्यमंत्री आवास पहुंचे थे। जब हम छात्र आंदोलन की बात कर रहे होते हैं और छात्र संघ चुनाव या आंदोलनात्मक गतिविधियों की बात करते हैं तो केवल हमें राजनैतिक पृष्ठभूमि के रूप में छात्र आंदोलन नजर आता है। लेकिन सच यह भी है कि छात्रों के समग्र विकास में छात्र आंदोलन का अहम योगदान है। इस आंदोलन के माध्यम से छात्रों के अंदर रचनात्मक विकास भी होता है।

प्रश्न यह है कि हमारा दृष्टिकोण और नजरिया क्या है। छात्र आंदोलन का अर्थ केवल चक्का जाम, तोड़फोड़ और अराजकता नहीं है। छात्र आंदोलन शब्द से दिग्भ्रमित भी होने की आवश्यकता नहीं है। छात्र आंदोलन का एक पक्ष रचनात्मक आंदोलन भी है। उदाहरण के लिए कॉलेज के वार्षिक उत्सव में विभिन्न प्रतिभाओं के छात्रों को अपनी प्रतिभा को निखारने का मौका मिलता है चाहे वह पोस्टर मेकिंग हो या एड मेकिंग, गीत संगीत हो या वाद-विवाद हर विधा के छात्र को अपने नैसर्गिक गुणों को निखारने का मंच मिलता है। कारगिल युद्ध का समय हो या भुज का भूकंप। बिहार की भयावह बाढ़ हो या छत्तीसगढ़ में नक्सल आतंक। देश का छात्र तन-मन-धन से समर्पित खड़ा दिखता है। सीमा के जवानों के लिए जहां वह रक्तदान शिविर का आयोजन करता है वहीं प्राकृतिक आपदाओं के लिए धन संग्रह, वस्तु संग्रह आदि के माध्यम से वह अपनी संवेदना और जुड़ाव प्रकट करता है। यह ठीक है कि प्रत्येक व्यक्ति के मन में राष्ट्रीयता की भावना होती है। राष्ट्रप्रेम उसके मन में कहीं हिलोरे ले रहा होता है। परन्तु उनको सूत्र में पिरोने का काम कोई छात्र संगठन ही कर पाता है। शायद कोई एक अकेला व्यक्ति ऐसा कदम नहीं उठा पाता।

छात्र आंदोलन का अर्थ केवल क्रांति ही नहीं है बल्कि जागृति भी है। चाहे वह कश्मीर आंदोलन हो या बांग्लादेशी घुसपैठ की समस्या के खिलाफ आंदोलन या यूनिक आईडेंटी कार्ड का विषय या फिर मतदाता की आयु का विषय रहा हो। विद्यार्थी परिषद सदैव एक छात्रआंदोलन के रूप में दिखा है। जो आंदोलन किसी व्यक्ति विशेष या राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं के लिए नहीं बल्कि देश के लिए है।

भारतीय छात्र आंदोलन का इतिहास बहुत ही सुनहरा है। हालांकि नब्बे के बाद इसके स्तर में गिरावट आई है। कहीं ना कहीं इस आंदोलन पर भटकाव व वैचारिक प्रतिबद्धता का अभाव दिखता है। या कि हम यूं कहें कि छात्रों को दिग्भ्रमित करने का प्रयास किया जा रहा है कि उनके हितों की रक्षा करने वाले उनको हथियार बना कर अपना राजनीतिक उल्लू सीधा कर रहे हैं। छात्र आंदोलनों पर लगातार प्रश्नचिह्न खड़े किये जा रहे हैं। बावजूद इसके छात्र आंदोलन के महत्व और इसकी प्रासंगिकता से इंकार नहीं किया जा सकता। बल्कि आज के दौर में छात्र आंदोलन की आवश्यकता ज्यादा हो गई है। वैश्वीकरण के दौर के कारण जिस प्रकार से शिक्षा के क्षेत्र में बाजारीकरण तेजी से बढ़ा है उसने अनगिनत समस्याओं को जन्म दे दिया है। आज जिस प्रकार शैक्षिक संस्थानों की विश्वसनीयता पर भी प्रश्नचिह्न दिखता है, डिग्री की मान्यता पर प्रश्नचिह्न है। छात्र महंगी शिक्षा लेने को मजबूर है। पूरी शैक्षिक व्यवस्था पर कोई चैक एंड बैलेंस नहीं है। अराजकता का माहौल है। आज छात्र सिर्फ इसलिए आत्महत्या कर रहा है कि उसको कोई रक्षक नजर नहीं आता। महंगी शिक्षा के लिए बैंकों से लिया लोन और किसी वजह से उसको न चुका पाने का डर छात्रों को आत्महत्या के लिए मजबूर कर रहा है। यह शिक्षा व्यवस्था न केवल महंगी है बल्कि अव्यवहारिक भी नजर आ रही है। एक छात्र 85 प्रतिशत अंक लेकर भी अपने पसंदीदा विषय में एडमिशन नहीं ले पाता। वहीं दूसरी ओर मैनेजमेंट कोटे के नाम पर कोई भी मात्र पैसों के दम पर एडमिशन लेने में कामयाब हो जाता है। कम्प्यूटर एजुकेशन, एयरहोस्टेस ऐकेडमी, और ऐसे अनेकों कोर्स जिनका कोई कैरिकुलम उपलब्ध नहीं है सभी संस्थान छात्रों को दिग्भ्रमित करके एडमिशन देने के पश्चात् उनके भविष्य के साथ खिलवाड़ करते हैं और सरकार मूक दर्शक बनी नजर आती है।

पूरे देश में कहीं भी फीस स्ट्रक्चर में एकरूपता नहीं है। इसको तय करने का काम भी सरकार का है। देश में भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, अराजकता, आतंकवाद और शैक्षणिक बाजारीकरण अपने चरम पर है। और ऐसे समय में 'मैं' के लिए नहीं, 'हम' के लिए लड़ने के लिए पुनः एक सशक्त धारधार छात्र आंदोलन की आवश्यकता है। और इसके लिए आवश्यक है नए तेवर, नए रचनात्मक हथियार की और यह कहने में कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी कि देश में पुनः एक सशक्त छात्र आंदोलन की आवश्यकता है। छात्र आंदोलन को किसी शायर के शब्दों में यदि कहा जाए तो यही कहना शायद उचित होगा-

मैं मस्त हूं मुसाफिर, मेरी पाबंद हैं राहें, राहों को कभी राह बदलने नहीं देता।

मैं मिट्टी का नन्हा दीपक ही सही, पर रात का साम्राज्य चलने नहीं देता।

मैं शतरंज की बिसात का हूं एक नन्हा प्यादा।
राजा को जो शह दूं तो फिर सम्भलने नहीं देता।

(लेखक अभाविप, दिल्ली के प्रदेश सह मंत्री व दिल्ली विश्वविद्यालय छात्रसंघ के कार्यकारी पार्षद रहे हैं। वर्तमान में भाजयुमो, दिल्ली प्रदेश के उपाध्यक्ष हैं।)

देश में छात्र असंतोष चरम पर

■ संजीव कुमार सिन्हा

इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है कि छात्र समुदाय का चरित्र परिवर्तनकारी होता है। इसलिए छात्र आंदोलन व्यवस्था परिवर्तन को साकार कर सकता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि छात्रों ने हमेशा समाज-परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। गौरतलब है कि स्वतंत्रता आन्दोलन में छात्रों ने बढ़-चढ़कर भाग लिया। महात्मा गांधी के आह्वान पर लाखों छात्रों ने अपने कैरियर को दांव पर लगाते हुए स्कूल और कॉलेजों का बहिष्कार किया। वहीं जेपी आंदोलन के दौरान लाखों छात्र व्यवस्था परिवर्तन के वाहक बने।

छात्र राजनीति का प्रस्थान बिंदु : भारत में छात्र राजनीति का इतिहास काफी पुराना है। इतिहास को खंगाले तो पता चलता है कि कोलकाता के हिंदू कॉलेज के अध्यापक विवियन डिरोजियो ने 1828 में प्रथम छात्र संगठन अकैडमिक एसोसिएशन की स्थापना की थी। इसके पश्चात् 1876 में आनंद मोहन बोस और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने स्टुडेंट एसोसिएशन का गठन किया। एसोसिएशन की प्रमुख मांग थी कि आईसीएस की परीक्षाओं में भारतीयों के लिए उम्र बढ़ाई जाए और परीक्षा केन्द्र भारत में भी बनाये जाए।

छात्र आंदोलन की गौरवशाली उपलब्धियां : राष्ट्रीय राजनीति में आज जो प्रमुख नेता के तौर पर ख्यात हैं, उनमें से अधिकांश छात्र राजनीति से ही उभरे लोग हैं-अरुण जेटली, सुशील कुमार मोदी, रविशंकर प्रसाद, विजय गोयल, लालूप्रसाद यादव, शरद यादव, नितीश कुमार, प्रकाश करात, सीताराम येचुरी, अजय माकन आदि। असम में छात्र आंदोलन से निकले लोगों ने ही सरकार चलाई। छात्र नेता प्रफुल्ल महंत मुख्यमंत्री बने। छात्र समुदाय शैक्षिक मुद्दों के साथ राष्ट्रीय मुद्दों पर भी आंदोलित हुआ है-

स्वतंत्रता आंदोलन- महात्मा गांधी के आह्वान पर लाखों छात्रों ने स्कूल कॉलेजों का बहिष्कार कर दिया। खुदीराम बोस छात्रावस्था में ही शहीद हो गए। प्रफुल्ल चाकी बंगाल सरकार के कार्लाइस सर्कुलर के विरोध में पूर्वी बंगाल में चलाए गए छात्र आंदोलन की उपज थे। बंग-भंग आंदोलन, असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन में छात्रों की सहभागिता उल्लेखनीय रही।

नक्सलबाड़ी आंदोलन-'सत्ता बंदूक की नली से निकलती है' इस नारे के सहारे प्रेसिडेंसी कॉलेज, स्टीफन कॉलेज, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय सहित तमाम शिक्षण संस्थानों के हजारों छात्रों ने सर्वहारा की तानाशाही और भूमि सुधार को लेकर हिंसक क्रांति का शंखनाद कर दिया। साठ के दशक में छात्रों पर नक्सलबाड़ी आंदोलन का प्रभाव पड़ा। लेकिन आगे चलकर यह नक्सलबाड़ी आंदोलन गुमराह हो गया और वह गुंडों का गिरोह बनकर रह गया।

जेपी आंदोलन- वर्ष 1973 में गुजरात विश्वविद्यालय में मेस खर्च की राशि बढ़ाए जाने के विरोध में छात्र आंदोलन हुआ और अगले साल 1974 में बिहार में शुल्क वृद्धि के खिलाफ छात्रों ने आंदोलन प्रारंभ किया। बाद में यह राष्ट्रव्यापी आंदोलन हो गया, जो व्यवस्था परिवर्तन का सूत्रधार बना। इसी आंदोलन के बूते केन्द्र में पहली बार गैर कांग्रेसी सरकार बनी।

आरक्षण विरोधी आंदोलन-नब्बे के दशक के प्रारंभ में मंडल आयोग की सिफारिशों के विरोध में छात्रों ने आरक्षण विरोधी आंदोलन को परवान चढ़ाया। हालांकि सभी प्रमुख छात्र संगठन आरक्षण विरोधी आंदोलन से दूर रहे। दो अक्टूबर, 1991 को वोट क्लब पर रैली हुई जिसमें लाखों छात्रों ने भाग लिया। इस आरक्षण विरोधी आंदोलन ने छात्र आंदोलन को बहुत नुकसान पहुंचाया और छात्रों के बीच विभाजन की लकीर खींच दी।

भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन-सन् 1988 में बोफोर्स कांड को लेकर भ्रष्टाचार के विरोध में देश भर में छात्र संगठनों द्वारा संघर्ष चलाया गया। दिल्ली विश्वविद्यालय छात्र संघ की पहल पर विश्वनाथ प्रताप सिंह की विशाल आम सभा दिल्ली विश्वविद्यालय में हुई।

शिक्षा के व्यावसायीकरण के खिलाफ आंदोलन-नब्बे के दशक में शिक्षा के व्यावसायीकरण के विरोध में छात्रों ने कैम्पसों में अभियान चलाया। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में निजीकरण के खिलाफ सशक्त आंदोलन खड़ा हुआ। इस सदी के प्रारंभ में सन् 2002 में शिक्षा और रोजगार के सवाल को लेकर विद्यार्थी परिषद् के बैनर तले 75,000 छात्रों ने संसद के सामने दस्तक दी।

छात्र राजनीति की जरूरत : 'छात्र राजनीति होनी चाहिए या नहीं।' यह बहस बहुत पुरानी है और आज भी इस पर जोरदार बहस चलती रहती है। भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है। छात्र राजनीति लोकतंत्र की बुनियाद को मजबूत करता है क्योंकि इससे जनता का राजनीतिक प्रशिक्षण सुनिश्चित होता है।

विद्यार्थी परिषद की स्पष्ट मान्यता है कि छात्र राजनीति को दलगत राजनीति से ऊपर उठकर कार्य करना चाहिए। विदित हो कि जेपी आंदोलन में विद्यार्थी परिषद् की किसी भी संगठन की अपेक्षा सबसे प्रभावी भूमिका थी। आंदोलन के पश्चात् 1977 में जब जनता पार्टी की सरकार बनी। तब तमाम संगठनों के कार्यकर्ता, जो इस आंदोलन से जुड़े रहे, उन्होंने चुनाव लड़ा और सरकार में भी शामिल हुए लेकिन विद्यार्थी परिषद के कार्यकर्ता चुनाव से दूर रहकर शिक्षा परिसरों में ही सक्रिय रहे। इतना नहीं तो इससे आगे बढ़कर 1 मई, 1977 को जनता पार्टी की कार्यसमिति में दिल्ली विश्वविद्यालय छात्र संघ के तत्कालीन अध्यक्ष अरुण जेटली को विद्यार्थी परिषद् की सहमति लिए बगैर सदस्य मनोनीत कर दिया गया, तो अरुण जेटली ने इसे स्वीकार नहीं किया। एक छात्र संगठन का दलगत राजनीति से दूर रहने का यह एक अनुकरणीय उदाहरण है।

आज देश के करीब तीन सौ विश्वविद्यालयों और पन्द्रह हजार कॉलेजों में से 80 फीसदी विश्वविद्यालयों में छात्र संघ नहीं है। अनेक राज्यों ने छात्रसंघों के चुनाव पर प्रतिबंध लगा दिए है। यह छात्रों के लोकतांत्रिक अधिकार पर हमला है। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में

पिछले पन्द्रह सालों से छात्र संघ चुनाव पर रोक लगी है। बिहार में करीब 25 वर्षों से छात्र संघ के चुनाव नहीं हो रहे। अपने अभिनव छात्र संघ चुनाव के लिए दुनियाभर में सुविख्यात जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (जेएनयू) छात्र संघ भी स्थगित है। छात्र संघों के चुनाव सुचारू रूप से संपन्न हो, इसके लिए बनी लिंगदोह समिति ने अपनी सिफारिशों में जेएनयू छात्र संघ का आदर्श उदाहरण प्रस्तुत किया है लेकिन विडंबना देखिए कि इसी समिति की सिफारिशों के चलते यहां छात्र संघ चुनाव बाधित है। देश का छात्र संसद और लोकसभा के लिए प्रतिनिधि चुन सकता है लेकिन अपने कॉलेज में छात्र प्रतिनिधि नहीं चुन सकता। छात्र संघ चुनाव के विरोध में सरकार और विश्वविद्यालय प्रशासन की ओर से आरोप लगाया जाता है कि इसमें धनबल का बोलबाला हो गया है और इसका अपराधीकरण हो गया है। बिहार में लगभग 25 वर्षों से छात्र संघ चुनाव नहीं हुए तो क्या यहां के परिसर हिंसा मुक्त हो गए? और दिल्ली विश्वविद्यालय जहां प्रतिवर्ष चुनाव होते हैं, वहां की शिक्षा व्यवस्था ध्वस्त हो गई? इससे इंकार नहीं किया जा सकता कि कई शिक्षण संस्थानों में छात्र संघ चुनाव में अपराधीकरण की प्रवृति व्याप्त है। यह सचमुच चिंता का विषय है लेकिन रोग को दूर करने के बजाए रोगी को मारना, यह कैसा न्याय है? यहां सवाल उठता है कि क्या लोकसभा और विधानसभा चुनाव में हिंसा नहीं होती? तो फिर छात्र संघ चुनाव पर ही क्यों रोक लगाए जाते हैं? कारण साफ है कि छात्र समुदाय स्वभाव से ही सत्ता और व्यवस्था विरोधी होता है। यदि छात्र एकजुट हो गए तो सरकार और प्रशासन की मनमानी कैसे चलेगी?

छात्र आंदोलन की प्रासंगिकता : जेपी आंदोलन के समय जो चुनौतियां थीं वो आज भी विद्यमान हैं। भ्रष्टाचार, शिक्षा में परिवर्तन, बेलगाम महंगाई, सामाजिक परिवर्तन के लिए लड़ाई, आर्थिक असमानता-आज भी हमारा मुंह चिढ़ाता है। इसलिए बदली परिस्थितियों में छात्र आंदोलन और भी ज्यादा प्रासंगिक हो गए हैं-

वैश्वीकरण का प्रभाव-वैश्वीकरण के कारण शैक्षिक पाठ्यक्रमों में बदलाव हुए हैं। वहीं छात्रों के वेशभूषा, खानपान, रहन-सहन और भाषा पर भी इसका प्रभाव पड़ा है। स्वदेशी चीजों को हीन भाव से देखने और पश्चिम देशों के उत्पादों के प्रति ललक बढ़ने की प्रवृति छात्रों में घर कर रही है। राष्ट्रवाद पर प्रश्न खड़े किए जा रहे हैं और देश-समाज से इतर कैरियर के पीछे ही सब भागे जा रहे हैं। केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री कपिल सिब्बल भारत में विदेशी विश्वविद्यालयों को स्थापित करने पर अड़े हुए हैं। ये विश्वविद्यालय भारतीय छात्रों में किस तरह की शिक्षा और संस्कार प्रदान करेंगे, यह सोचकर ही परिदृश्य भयावह लगने लगता है।

शिक्षा का व्यावसायीकरण : गत दो दशकों में शिक्षा का व्यावसायीकरण काफी तेजी से बढ़ा है। शिक्षा के मंदिर दुकान में तब्दील हो गए हैं। अयोग्य छात्र भी पैसे के बूते डिग्रियां खरीद रहा है जबकि प्रतिभाशाली छात्र पैसे के अभाव में उच्च शिक्षा से वंचित हो रहा है। वास्तव में, शिक्षा आम आदमी की पहुंच से दूर हो गया है। प्रतिभाशाली छात्र असमानता का शिकार हो रहा है। शिक्षण संस्थानों का उद्देश्य शैक्षिक गुणवत्ता के बजाय धन कमाना हो गया है। सवाल है कि ऐसी परिस्थितियों में एक आम छात्र के हक के लिए कौन सामने आएगा? जाहिर है छात्रों को ही अपने अधिकार के लिए एकजुट होना होगा।

बेरोजगारी-देश में विकराल रूप धारण करती बेरोजगारी की समस्या छात्र-युवाओं के माथे पर चिंता की लकीरें खींच रहा है। बेरोजगारी का आलम यह है कि चपरासी की नौकरी के लिए स्नातकोत्तर की पढ़ाई कर चुके छात्र भी आवेदन-पत्र भेजते हैं। माओवादी बेरोजगार युवाओं को मासिक वेतन का लालच देकर उनके हाथों में बंदूकें थमा देते हैं और उनसे अपने ही देश के नागरिकों की नृशंस हत्याएं करवाते हैं।

शिक्षा में अल्पसंख्यकवाद : संविधान की धारा 29 व 30 के अंतर्गत अल्पसंख्यकों को शैक्षिक संस्थानों की स्थापना हेतु विशेष अधिकार दिए गए। अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थान इस धारा का जमकर दुरूपयोग कर रहे हैं। सेंट स्टीफन कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय के निर्देशों की धज्जियां उड़ाते हुए नामांकन में मनमर्जी करता है। केंद्र सरकार ने बिहार, प. बंगाल, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश और केरल में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की शाखा खोलने का निर्णय लिया है। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय का साम्प्रदायिक इतिहास सर्वविदित ही है।

माओवाद की चुनौती : आज देशभर में जिस तरीके से माओवादी हमले बढ़ रहे हैं वह अत्यंत ही चिंता का विषय है। पिछले दिनों छत्तीसगढ़ के दंतेवाड़ा में माओवादियों ने बर्बर हमले कर सीआरपीएफ के जवानों और आम जनता के लाशों के ढेर लगा दिए तो प. बंगाल में ज्ञानेश्वरी एक्सप्रेस पर हमला कर सैकड़ों लोगों की जानें ले ली। माओवाद का सामाजिक क्रांति से कोई लेना देना नहीं है, वस्तुतः यह एक विशुद्ध आतंकवाद है, जिसका लक्ष्य येन-केन-प्रकारेण सत्ता कब्जाना है। कॉलेज-विश्वविद्यालयों में भी माओवादी छात्र संगठन सक्रिय है। दंतेवाड़ा में माओवादी हमलों के बाद जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में वामपंथी छात्रों ने सीआरपीएफ जवानों की मौत पर खुशियों का इजहार किया। विश्वविद्यालय परिसर में इस तरह की छात्र राजनीति चिंता का विषय है और ऐसी हरकतों का मुंहतोड़ जवाब दिया जाना चाहिए।

आतंकवाद का विषबेल : दुनिया भर में इराक के बाद भारत ही सबसे अधिक आतंकवाद से त्रस्त है। देश भर में कब कहां आतंकवादी बम विस्फोट कर बेगुनाह लोगों के लाशों के ढेर लगा दें, कहा नहीं जा सकता? निश्चित रूप से कांग्रेसनीत यूपीए सरकार में आतंकवाद से लड़ने को लेकर इच्छाशक्ति का अभाव है। गौरतलब है कि भारत में आतंकवाद का प्रमुख स्रोत पाकिस्तान की खुफिया एजेंसी आईएसआई और बंगलादेशी घुसपैठिए हैं। तथाकथित सेकुलर दलों द्वारा वोट बैंक की राजनीति के चक्कर में गंभीर खामियाजा देश को भुगतना पड़ रहा है। अब आतंकवाद का कारण गरीबी और अशिक्षा नहीं है बल्कि उच्च शिक्षा प्राप्त युवक आज आतंकवादी बन रहा है। विश्वविद्यालयों में आतंकी गतिविधियां संचालित हो रही है। आज घुसपैठ के खिलाफ सघन अभियान चलाने की जरूरत है वहीं आतंकवाद के विरोध में भी आवाज बुलंद करने की प्रबल आवश्यकता है।

वर्तमान समय में राष्ट्रीय स्तर पर सही नेतृत्व का अभाव दिखता है। इससे देश का छात्र समुदाय निराश है। स्पष्ट ध्येय न होने के कारण छात्र आंदोलन आज विध्वंस की पहचान बन रहा है। छात्रशक्ति राष्ट्रशक्ति है लेकिन राजनीतिक दल इस शक्ति का सदुपयोग करने के बजाय अपने हित साधने में दुरूपयोग कर रहे हैं। उपरोक्त तमाम चुनौतियों के मद्देनजर आज एक समग्र छात्र आंदोलन की जरूरत रेखांकित हो रही है। *(लेखक अभाविप, दिल्ली प्रदेश के कार्यालय सचिव रहे हैं)*

Contextualizing Student Movement in National Democratic Culture And Politics

■ Dr. Shiv Shakti Bakshi

A pervading sense of suspicion and doubt is evident in the society when it comes to discuss role of student movement in the country. Students are generally linked to various problems that persist in the society - the problems related to unemployment, education, terrorism, crimes, drugs etc. are generally attributed to youth domain. Student movement is seen as something associated with agitations resulting in public disorder, lock out, bandh, collapse of law and order and anarchy. There are little efforts to understand the importance of student activism, its constructive role in the society and the need of making students the torchbearers of youth movement in the country. The mindset responsible for such an approach is that students are generally viewed and projected as problem; they are rarely seen as the solution for the different ills afflicting the society. The political parties in particular and society at large approach the youth with patrimonial attitude 'promising' to resolve their problems rather than seeking to mobilize students for the solutions that society urgently needs. It is therefore little encouragement is given to student activism by the establishment and the society. While the society is yet to shed its colonial hangover, the system needs to democratize itself by resolutely snapping its ties from colonial legacy. It is yet to be accepted that student activism strengthens the democratic process and consequently keeps the politics on the desired trajectory.

Student Movement: Global Scenario

Student movement may be attributed to student activism leading to youth intervention in various forms in the society. Student Activism which is considered to be at the core of youth movement has been the motivating factor behind many of the movements across the world. The advent of new nation-states in Europe on the foundation of modern democracies saw the shift in youth activities to the university campuses resulting in student movements influencing the political course of different nations in the west. In England student activism dates back to the1880s when students were allowed to form their unions as representative organizations culminating into the formation of apex student body known as National Union of Students (NUS) in 1921. Although NUS was mandated to keep itself out of politics, in the course of time it engaged itself with the issues related to Racism and Vietnam War. The student activism acquired the shape of a movement in 1960s when a student rally of 1, 00,000 was held which was followed by a protest of up to 80,000 strong in Grovesnor square, anti-racist protests and occupations in Newcastle, the breaking down of riot control gates and forced closure of the London School of Economics in 1870s. It is important to note the highly democratic character of British student movement which signifies the fact that most British students had faith in the democratic system and the authorities reciprocated by not dealing the movements with heavy hand in authoritarian manner which is otherwise evident elsewhere.

Student leaders exercised considerable impact on the shaping of public discourses in France. The most noticeable event in the history of student movement is the student protest in Sorbonne in Paris in 1968 when the University of Paris at Nanterre was closed due to problems between the students and the administration. In protest of the closure and the expulsion of Nanterre students, students of the Sorbonne in Paris began their own demonstration resulting in a nation-wide insurrection during which a variety of groups, including communists, Anarchists and right-wing libertarian activists, used the tension to advocate their own causes. It set in motion a chain of such protest across different countries including Germany, Spain and Mexico against authoritarianism and anti-democratic moves of the concerned governments.

In China student movement has played significant roles at almost every crucial juncture of Chinese history. Intense nationalistic feeling and sense of responsibility have been the hallmark of student movement in China.

The birth of Chinese communism is attributed to May Fourth Revolution in which around 3,000 students gathered at Tiananmen Square against Kuomintang policy of Americanism. But the irony is that pro-Democracy movement in 1989 led by the students at the Tiananmen Square protests ended in a abrutal government crackdown resulting in severe repression and massacre of numerous student activists. June Fourth Massacre or 89 Pro-democracy Movement as it is generally called is one the most glorious student resistance movements known to the world history. Thousands of students gathered at Tiananmen Square demanding a democratic system and end of authoritarian communist rule. The communist government of China responded with coercive measure sending army and tanks to crush the movement with heavy hand. In the resultant massacre around 10,000 students have been reported to be killed.

Initially in 1930s student movement in United States engaged itself with attempts to change the american educational system and fight racial discrimination. In 1960s schools were targeted as social agents by Students for a Democratic Society (SDS) and witnessed the formation of the Student Nonviolent Coordinating Committee, which fought against racism and for integration of public schools across the US. The students also protested against American invasion of Combodia in 1970. In 1980s and 1990s the American society increasingly saw "service" as the focal point of student movement and campaigns to include work for funding of public schools, against increased tuitions at colleges or the use of sweatshop labor in manufacturing school apparel, for increased student voice throughout education planning, delivery, and policy-making (e.g. The Roosevelt Institution), and to raise national and local awareness of the humanitarian consequences of the Darfur Conflict. The student movement has also been showing increasing interests in the issues concerning global warming and anti-war activism.

It may be noted that encouraging student movement is implicit in any democratic system which seeks to ensure maximum participation of its constituents. A democratic student movement not only disciplines the youth force but also seeks to channelise them in right direction and in the process rescue the students from the clutches of misguided elements. The experience so far point to the fact that only anti-democratic forces consider student movement a threat to the establishment and choose to check its progress. Chinese repression of student movement at Tiananmen Square is a case in point.

Student Movement in India: Democratic Political Culture

The legacy of Indian national movement is considered to be at the core of the values upheld as guiding principle of the student movement in the country. The lofty ideals of the freedom struggle motivated and groomed the young leadership of the country. The student movement may be given credit for the emerging democratic mindset of the younger section of the society. It cannot now easily buy rhetoric built around cults of personality and dynasties. A democratic youth is essentially non-conformist whose energy needs to be usefully diverted to constructive political channels through organizational mechanism and appropriate ideological grooming for promoting the interests of the nation. The entire JP movement prior to the imposition of emergency was in fact a youth movement triggered by the Nav-Nirman Andolan in Gujarat and carried forward by ABVP throughout the country under the leadership of Loknayak Jayaprakash Narayan. The Ram Janamabhoomi movement saw the youth mobilization at its best relegating the forces opposed to the movement to the background. The current saga of success of India's increasing dominance over knowledge capital throughout the world is being written by the youth.

In the recent years there has been remarkable achievements by youth in different fields but in politics the nation is witness to growing void vis-à-vis youth leadership. It seems that there is an increasing disconnect between the student movement and larger political process in the country. Lack of student interest in the democratic process is a phenomenon set in motion by the disenchantment of the student from the politics. Those who claim youth participation through cosmetic representation apparently lack appropriate understanding of the urge which motivates today's students. The urge to see India get its rightful place in the comity of nations and its emergence as a developed, self-reliant, united and strong world power in every respect is at core of the aspirations nurtured by democratic and nationalist student movement. A student brimming with self-respect, self-confidence and having faith in democracy today aspires to build such an India. Any political party representing a culture of sycophancy and family rule cannot attract youth possessed of such virtues. The main problem between the real student movement and the political culture of the country may be portrayed as crisis between "idealism" and "realism" wherein the 'compulsions' of realpolitics are cited as reasons for having failed in promoting the value system

which student movement espouses in its attempt to build a better society and a strong and prosperous nation.

One special feature of the politics today is the attempts being made by different political parties to fascinate youth to their side. The increasing population of young voters makes it incumbent upon political parties to devise means to garner the support of this valuable section of the electorate. Different political parties are trying to project themselves as having promoted the 'real' youth leadership in the country and thereby claiming to be their benefactor and protector of the best interests of the younger electorate. In such a cosmetic make over most of the political parties have embarked upon different schemes which only furthers the "disconnect" that they enjoy with the youth. Such exercise is symptomatic of the rot that has crept into the national political culture. It establishes the fact that most of the political parties in India have no mechanism to attract younger people; it has no programme to involve youth and no ideology or leadership to inspire and channelise the youth power. Current trend of youth recruitment through interviews (as devised by one of the major political parties) not only exposes the inherent organizational weakness but it is one of the biggest mockeries of democracy in the recent past. It looks as if the political parties are not attracting the youth to its organization as dedicated activists but recruiting henchmen to do at its bidding at a price.

Lack of dynamic leadership in politics is generally attributed to youth apathy towards politics. It is being said that students are getting more career oriented and less inclined to the commitment that the rough and tumble of political life demands. But the fact remains that the political culture of the country is not in tune with the urge with which the youth of today stands inspired. Therefore it remains somewhat difficult for the political parties to present a real and genuine youth leadership despite having constituted separate department of youths within their party fold. Whatever youth leadership these political parties have today generated mainly owes it to dynastic politics and not to the stated aims of grooming real and dynamic young leadership. The prevailing political culture fails to attract talented youths thus yielding the available space (if left unoccupied by those connected to lineage and dynasty) to unwanted, retrograde, sycophant and anti-social elements in the name of youth representation. Such elements fail to give genuine leadership to the society and regale in perpetrating corruption and status-quoism. That is why while we witness brilliant achievements in other sectors, politics continues to score downswing with politicians fast losing ground in public standing.

Student MovementAn Essential Component of Democratic System

Indian society is yet to fully recognize the importance of student activism in a democratic set up. We tend to forget that we have embraced a democratic system which necessitates efforts towards optimal participation of the citizens in democratic process. A democratic system is not limited to elections alone but it functions on the basis of a democratic culture with the establishment promoting and nurturing the concept of democratization of the society. India is not only a society which is getting younger by every passing day, but it has also given voting rights to its youths as early an age as 18. Student activism seeking to build a student movement in the country is certainly the most desirable component of a democratic system which may further enthuse the youth of the country with the character and quality needed to cleanse the political system and bureaucracy of its various ills. A vibrant and dynamic student movement may be considered an essential component of the democratic system.

In the current scenario, mechanism to groom youth leadership in the country is urgently needed. There is a need to nurture the democratic culture to attract upright youth by instilling a sense of nationalism filled with the vision of a vibrant and prosperous India. Unlike cosmetic attempts to create hordes of sycophants, the focus on self-respecting youth power should be emphasised. While communism misleads the non-conforming youth towards naxalism by instigating them to rebel violently and mindlessly, efforts should be in transforming the non-conforming urge of the youth towards constructive activities channelising the youth power in the national interest. Rather than approaching the youth with "patrimonial" approach the youth today needs opportunity – which we may call "Democratic Opportunity". The system today rarely provides the youth with the "Democratic Opportunity" as an inbuilt organizational mechanism so as to connect the student movement to youth leadership and thereby providing opportunities for upcoming national leadership fresh with new ideas and vigour. Student movement is not a problem, it is the solution to the problems facing the society as it is committed to gel experience with energy and wisdom with dynamism. The ideology that motivates youth, the mechanisms that provide "Democratic Opportunity" and the examples that guide and inspire are the need of the day in the interest of democratic political culture of the nation.

(The Writer has been an ABVP activist from JNU and currently associated with Kamal Sandesh)

दस्तावेज

हम अंकुश का काम करेंगे!

सम्पूर्ण क्रांति का मकसद मात्र सत्ता परिवर्तन नहीं अपितु समाज परिवर्तन था। सत्ता परिवर्तन तो हुआ लेकिन सरकार कल्याणकारी लक्ष्य से भटक गई। सरकार को चेताते हुए अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद्, बिहार प्रदेश छात्र संघ समन्वय समिति एवं जनता युवा मोर्चा ने बिहार के तत्कालीन मुख्यमंत्री को सम्पूर्ण क्रांति के एक साल बाद 14 मार्च, 78 को ज्ञापन सौंपा। इस ज्ञापन का पाठ आज भी प्रासंगिक है। हम इसे यहां दस्तावेज के रूप में प्रकाशित कर रहे हैं :-

सेवा में,

माननीय मुख्यमंत्री महोदय,
बिहार सरकार, पटना।

महोदय,

हम युवा-छात्र संक्रमण-काल में आपको सम्बोधित कर रहे हैं। विधान सभा जनाकांक्षा के प्रतिनिधियों की सभा है और आप उस सभा के सूत्रधार, अत: वर्तमान संक्रमण-काल की अन्त:क्रियाओं के संदर्भ में आपसे संवाद हो, यह हमें अत्यावश्यक लगा। ऐसा इसलिए भी जरूरी समझा गया कि विधानसभा के भीतर और विधानसभा के बाहर के वायुमंडल में अब भी भेद उत्पन्न हो जाता है तब वह घड़ी संकट की घड़ी होती है और उसके परिणाम भयंकर होते हैं, सन् 70 से 76 के हमारे अनुभव से भी इसकी पुष्टि होती है। हम यह नहीं कहते कि वह 'भेद की प्रक्रिया' शुरू हो गयी है। भेदक प्रक्रिया का यह अंकुर विषवृक्ष बन जाए, इसके पूर्व ही इसे नष्ट कर दिया जाना चाहिए।

छात्र-युवावर्ग भी इस दिशा में कुछ सोचता रहा है क्योंकि श्रीमती इंदिरा गांधी के विषवृक्ष अधिकतर इसे ही भोगना पड़ा था। इसीलिए पुन: हमारे कान खड़े हुए हैं। यह ज्ञापन हमारे उसी चौकन्नेपन तथा दायित्वबोध का प्रदर्शन है।

1. हम छात्र-युवा वर्ग अपने चिन्तन, अपने दायित्व-संकल्प तथा अपनी मांगें लेकर आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं। हमारा विनम्र निवेदन है कि हमारी बातों को बड़बोलापन, हमारे दायित्व संकल्प को दिवास्वप्न कल्पना तथा मांगों के टकराव अथवा चुनौती नहीं समझा जाय।

हमारा चिन्तन एवं दायित्व संकल्प

हम छात्र युवाओं का वर्ग समाज का सर्वाधिक संवेदनशील वर्ग है, इसलिए समाज-जीवन से तनिक हलचल को भी हम महसूस कर लेते हैं। समाज तथा राष्ट्र जीवन में प्रत्येक संघर्ष में हमारी निर्णायक भूमिका रही है, जहां इस तथ्य से हम गौरवान्वित हैं, वहीं हर हलचल के प्रति हम सजग भी रहते हैं, क्योंकि समाज तथा राष्ट्र जीवन में उठे हर गलत कदम की पहली चोट हमें ही सहनी होती है। हम अपनी रचनात्मक भूमिका में लगे रहना चाहते हैं, परन्तु इसके लिए यह भी आवश्यक है कि हमें अपनी रचनात्मक भूमिका के लिए सही वातावरण भी मिले। इस सही वातावरण की तलाश में ही हमने 18 मार्च, '74 को बिहार विधानसभा के सामने प्रदर्शन किया था। प्रश्न हो सकता है कि आज की स्थिति भी क्या वही है, जो 18 मार्च, '74 के प्रदर्शन के समय थी? हम यह तो नहीं कहें कि आज की स्थिति भी वही और वैसी ही है, लेकिन यह अवश्य कहना चाहेंगे कि जिन प्रश्नों को लेकर चार वर्ष पूर्व प्रदर्शन तथा आन्दोलन हुआ था, वे अभी तक अनुत्तरित हैं। जनता सरकार को गठित हुए लगभग एक वर्ष पूरा होने को आया लेकिन 18 मार्च, '74 को उठाये गये सवाल के समाधान अभी तक नहीं निकले, इससे चिन्ता अवश्य होती है। हमें आशंका होती है कि कहीं हमारे द्वारा उठाये गये प्रश्नों को आश्वासनों के माध्यम से लटकाये रखने का कोई षड्यंत्र तो नहीं चल रहा?

2. आज से एक वर्ष पूर्व दूसरी आजादी देश को मिली। उस लड़ाई में छात्रों नौजवानों की निर्णायक भूमिका थी। भारत में सन् 42 में छात्रों नौजवानों ने विदेशी हुकूमत के खिलाफ लड़ाई में अगुवाई की थी। फिर बिहार आन्दोलन में भी छात्रों ने ही पहल की।

फरवरी 17, 18, 1974 को छात्र नेता सम्मेलन में कांग्रेसी हुकूमत के खिलाफ संघर्ष का बिगुल फूंका गया। उस छात्र नेता सम्मेलन में कम्युनिस्ट और कांग्रेस समर्थक छात्र युवा संगठनों ने छात्र आन्दोलन की पीठ में छूरा घोंपने की असफल कोशिश की थी। उनके चेहरे और नीयत बेनकाब हुए। गफूर सरकार में छात्र आन्दोलन की अहमियत को समझने की कूबत नहीं थी। वे सत्ता के नशे में डूबे थे, श्रीमती इन्दिरा गांधी के इशारों पर प्रान्तों की हुकूमतें बेशर्मी से चारणभाट का कार्य कर रही थी। कम्युनिस्टों ने

हमेशा की भांति उस समय भी जनभावना की उपेक्षा की, छात्रान्दोलन के साथ गद्दारी की और सत्ता के दामन से लिपटे रहे।

विधानसभा के सामने सत्रारंभ के दिन प्रदर्शन करने का छात्रों ने तय किया। वह दिन उस साल 18 मार्च का था। प्रदर्शन में कांग्रेस एवं सी.पी.आई. के गुर्गों ने अराजकता फैलाने की कोशिश की। उनकी ओट में, उनके द्वारा फैलायी गयी अराजकता को दुरुस्त करने के नाम पर पुलिस ने छात्रों के आन्दोलन को लाठी गोली से दबाने की बेवकूफी की। सी.पी.आई. के विधायक श्री लाल बिहारीसिंह आगजनी काण्ड में पकड़े गये थे। पूरा शहर गुण्डागर्दी से आक्रान्त हुआ। दसियों छात्र उस दिन शहीद हुए। समाचार पत्रों के दफ्तर जलाये गये।

शान्तिपूर्ण प्रदर्शन पर पुलिस का हमला, गफूर सरकार का अंधा-बहरापन आगे के संघर्ष के लिए जिम्मेदार बना। छात्रों ने विधानसभा भंग करने का नारा दिया। लोकनायक का नेतृत्व छात्रों को प्राप्त हुआ। उनके नेतृत्व से आन्दोलन को गहराई मिली। छात्रों के उत्साह से इसका विस्तार हुआ। लोकशक्ति और राजशक्ति के बीच संघर्ष छिड़ गया। भला 5 जून का विशाल जनप्रदर्शन, 2, 3, 4 अक्टूबर, 74 को बिहार बंद का सफल आह्वान, 4 नवम्बर को जे.पी. की ऐतिहासिक सचिवालय घेराव की यात्रा किसे याद नहीं होगी।

शान्तिपूर्ण आन्दोलन को अन्ततः जे.पी. ने मोड़ दिया था, 5 जून, 74 को सम्पूर्ण क्रान्ति की घोषणा करके, कि हमें सत्ता परिवर्तन ही नहीं करना है वह तो पड़ाव है। सम्पूर्ण क्रान्ति हमारी मंजिल होगी। 4 नवम्बर को पूरी तरह स्पष्ट हुआ कि बिहार सरकार तो केन्द्रीय सरकार की कठपुतली मात्र है। तब चुनाव में निबटा जायेगा, कहकर जे.पी. ने आन्दोलन को राष्ट्रव्यापी विस्तार दिया। पूरे देश में वे दौरा करने लगे।

केन्द्रीय सत्ता में विराजमान श्रीमती गांधी को भय लगा। आन्दोलन की आंच वे सह नहीं सकी। उन्होंने प्रतिक्रिया में चोट की। 25 जून, 75 की अंधेरी रात आयी। इंदिरा जी का ताण्डवनृत्य शुरू हुआ। लोकनायक समेत राष्ट्रीय नेता जेलों में डाल दिए गए। लोकतंत्र का मुखौटा उतार फेंका गया। इन्दिरा गांधी ने स्वयं तानाशाही का खुला खेल खेला। छात्र-युवा शक्ति ने राष्ट्रीय प्रतिकार शान्तिपूर्ण ढंग से प्रारंभ किया। बुलेटिन छापकर गुप्त रीति से बंटने लगीं। नवम्बर 14 सन् 75 से लोक संघर्ष समिति के आह्वान पर सत्याग्रह हुआ। हजारों की संख्या में छात्रों नौजवानों ने सत्याग्रह किया। इसी संघर्ष के मोर्चे के रूप में 77 का लोकसभा चुनाव उपस्थित हुआ। इन्दिरा जी को लेनी की देनी पड़ गयी। लोकनायक ने इस चुनाव को तानाशाही और लोकशाही के बीच का चुनाव बताया। लोकनायक का संदेश लेकर छात्र युवक दौड़ पड़े गांवों की ओर। चुनाव में इन्दिरा गांधी की तानाशाही पराजित हुई। लोकतंत्र जीता। संघर्ष की आंच में विभिन्न दलों के अस्तित्व पिघल गये थे। जे.पी. की तपस्या और नेतृत्व के कारण और छात्र-युवकों के खून पसीने की कीमत पर सत्ता परिवर्तन हुआ और विकल्प के रूप में जनता पार्टी सत्तारूढ़ हुई। छात्र-युवकों के बलिदान जे.पी. की तपस्या और भारतीय जनता के विवेक के परिणामस्वरूप यह सरकार सत्ता में आई। इसके पीछे छात्र-युवकों का जो खून पसीना लगा है, वह हमें विरासत में मिले हैं।

3. छात्रशक्ति को यह अहसास भी है उसे सत्ता परिवर्तन के पड़ाव पर पहुंच कर रुकना या सत्ता की भुलभुलैया में भटक नहीं जाना है। किसी भी देश का नवनिर्माण विधानसभा की चाहरदिवारी के अन्दर या सत्ता के भारी भरकम यंत्र के द्वारा नहीं होता, वे तो जनाकांक्षाओं की पूर्ति में साधन बनकर ही सार्थक रह सकते हैं। वह विराट लोकशक्ति के जागरण, जनसहभाग के जरिए होता है। राष्ट्र कल्प अथवा नवनिर्माण तो लोकसभा और राजसत्ता के बीच सम्यक् समीकरण की स्थापना तथा तदनुकूल क्रियाशीलता से ही सम्भव है। इस समीकरण तथा क्रियाशीलता के लिए यह जरूरी है कि विधानसभाओं की अंग कार्यकारिणी के साथ कंधे से कंधे मिलाकर विधानसभाओं की जननी लोकसत्ता का क्रियात्मक सहभाग अग्रसर हो। छात्रशक्ति लोकसत्ता के क्रियात्मक सहभाग का जीवन अंग है और स्वयं लोकसत्ता की जीवनी शक्ति का प्रकट रूप है, ऐसा हम मानते हैं।

अतः छात्रशक्ति की साधना अभी अधूरी है उसे रुकना नहीं है, आत्मसंतोष में बिखरना नहीं है, उसकी यात्रा शेष है। समाज-परिवर्तन, का पहाड़ उसे चढ़ना है, छात्रयुवा वर्ग के सामने गंभीर चुनौतियां हैं।

4. सत्ता और दलगत राजनीति से बाहर रहने में ही छात्रशक्ति की सार्थकता है। सत्ता से उसकी धार भोथरी हो जायेगी। हम सरकार के न अंधभक्त हैं, न अंध विरोधी। जनता-सरकार के प्रति हमारी आत्मीयता अवश्य है, आन्दोलन की उपज होने के कारण हम चाहते हैं और हमारी शुभकामनाएं इसके साथ है कि वह राष्ट्र कल्प का कार्य करें, पर हमारे समर्थन को हमेशा के लिए किसी भी परिस्थिति में वह पूर्ण स्वीकृत न मान लें।

5. आज भी वे तत्व जो तानाशाही के व्यवहार में आस्था रखते तथा अपने घृणित स्वार्थों को सुरक्षित मानते हैं,

सक्रिय है। चोट खाये हैं पर नाखून घिस कर पैना कर रहे हैं। छात्र-युवाशक्ति को निगरानी रखनी है कि वे तत्व सर न उठा पायें। कोई भी सत्ता तानाशाही की ओर अग्रसर न हो सके ऐसी प्रचण्ड दबावशक्ति जनता को पैदा करनी है। इसके लिए आवश्यक रहेगा कि छात्र शिक्षाक्षेत्र को राजनैतिक हस्तक्षेप और चाल-बाजियों से मुक्त करें। छात्रों का राजनैतिक हितों के लिए शोषण नहीं हो यह जरूरी है। शिक्षाक्षेत्र को स्वयंपूर्ण सही नेतृत्व उत्पन्न करने में समर्थ, स्वावलम्बी रहना है। हमें जनता के बीच, उसकी चेतना को विकसित करने तथा उसे उदग्र बनाये रखने के लिए जाना है। एक ओर तानाशाही एवं समाज विरोधी तत्व (राजनैतिक और गैर राजनैतिक) सक्रिय हैं, दूसरी ओर विभिन्न राजनैतिक गुट छात्रों की शक्ति को अपनी हैसियत बढ़ाने की दृष्टि से उपयोग करने में लगे हैं, वर्तमान सरकार कहीं गद्दी में जाकर महलों की भूलभुलैया में अपने को भूल न जाये यह भी देखना है। जनता के बीच जाकर छात्रों नौजवानों को संगठित होकर ऐसी ताकत पैदा करनी है कि आपात्काल का इतिहास किसी भी सरकार द्वारा भविष्य में न दोहराया जा सके।

हमें अभी हमारी मंजिल नहीं मिली है। सत्ता-परिवर्तन तो पड़ाव भर था। सम्पूर्ण क्रान्ति लक्ष्य है। समाज परिवर्तन, व्यवस्था-परिवर्तन उसके पहलू हैं। राजशक्ति पर लोकशक्ति का अंकुश उसका एक पहलू है। महात्मा गांधी और जयप्रकाश के सपनों का भारत बनाने को हम कृत संकल्प हैं। हम उसके शिल्पी हैं। हमारी वह साध है। हम ही उसके लिए सक्षम हैं। हम जानते हैं कि सत्ता परिवर्तन को व्यवस्था में परिवर्तन लाने का साधन बनाया जा सकता है, पर सत्ता लोगों की स्वार्थसिद्धि का उपकरण न बन जाए यह भी देखना है। कल्याणकारी लक्ष्य से वह भटक न जाए। भटकने पर उसे जनता की दण्डशक्ति तैयार मिले यह भी इन्तजाम करना है।

इस दृष्टि से छात्र-युवाशक्ति को एक ओर शिक्षाक्षेत्र को सबल, संगठित, सत्ता राजनीति की पहुंच से परे खड़ा करना है। शिक्षा शिक्षाविदों के हाथ हो, शिक्षा को समाज रचना में, आर्थिक संरचना में आज अपेक्षित स्थान को बचाना, उसे सम्मान का स्थान मिले, प्राथमिकता मिले यह देखना है। बिहार आन्दोलन की 12 सूत्री मांगों और अन्य मूलभूत मांगों यथा महंगाई, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार पर रोक की मांग आदि को जागृत रखना है, इस सरकार से सही कार्य कराने हैं। उसमें सरकार की ढिलाई न हो, नजरअंदाजी कहीं न हो यह ध्यान रखना है।

6. हमारे आगे लोकनायक ने दो लक्ष्य रखे हैं एक रचनात्मक व्यवस्था-परिवर्तन का और दूसरा लोकशक्ति और राजशक्ति के बीच समीकरण बैठाने का। इसके लिए एक ओर ग्रामोन्मुखी होकर छात्रों युवकों की शक्ति को रचनात्मक अभियान, प्रकल्प आदि करने होंगे। जनता को इसके दायित्व और अधिकारों की समझदारी बढ़ानी होगी। इसके लिए हमें एक ओर शिक्षा की स्वायत्तता, शिक्षा के लोकतंत्रीकरण, शैक्षिक वातावरण, शिक्षा की विषय वस्तु और पद्धति में परिवर्तन आदि लक्ष्य पूरे कराने हैं इसके लिए छात्रों को जागरूक संगठन निर्माण, समाज में वह मांग पैदा करना और सरकार पर दबाव देना होगा। दूसरी ओर छात्रों की शक्ति अनेकाविध रचनात्मक कार्यों यथा, सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ संघर्ष, दहेज, फिजूलखर्ची आदि के शोषण के खिलाफ स्थानीय संघर्ष की स्थितियां भी पैदा करनी होगी, वहीं तीसरी ओर सरकार के ऊपर अंकुश के नाते कार्य करना है। इस तीसरे काम का स्वरूप होगा सरकार के अच्छे कामों का उल्लेख कर सहयोग देते हुए उत्साह बढ़ाना और उसके गलत कामों की जिम्मेदारी पूर्वक निन्दा करते हुए विरोध प्रगट करना। उसे विरत करने के लिए दबाव देना। पर इस काम में हम न सरकार को भटकने देंगे न टूटने देंगे न किसी को तोड़ने देंगे। हम छात्र नौजवानों को आक्रमक किन्तु उत्तरदायी, रचनात्मक और संघर्षशील भूमिका अदा करनी है। हम अंकुश का काम करेंगे, हथौड़े का नहीं। अंकुश की धार तेज रखनी होगी। खुद मंजिल पर आगे बढ़ना होगा तथा सरकार को उस रास्ते से ले चलना होगा। महावत की समझदारी हाथी से अधिक है, इसका हमें ध्यान है। हाथी के प्रति स्नेह भी रखेंगे पर उसे मनमानी करने की छूट भी नहीं देंगे।

उपर्युक्त निवेदन में छात्रयुवा वर्ग के चिन्तन तथा दायित्व-संकल्प स्पष्टतया उभरते हैं। हमारी तैयारी लोकसत्ता तथा राजसत्ता के सही समीकरण की तलाश तथा उसे क्रियाशील करने एवं बनाये रखने की है। हम छात्र-युवा अपने सहभाग के तौर पर जनता-सरकार की हर प्रकार का उचित सहकार देने को तैयार हैं, बशर्ते वह भी हमें सही वातावरण दे। हम गांव-गांव जाकर ग्रामीण उत्थान तथा जन-जागरण करने को तैयार हैं, हम हर जनतंत्र विरोधी, समाज विरोधी, तानाशाही तत्वों से टक्कर लेने को प्रस्तुत हैं। राष्ट्रकल्प के लिए हम वह हर कुछ करने को कृतसंकल्प है जिसकी अपेक्षा राष्ट्र हमसे करता हो। हमने अपने दायित्व-संकल्प को भी स्पष्ट किया है, उस दिशा में हमारी रचनात्मक भूमिका है।

स्वच्छ उदयपुर स्वस्थ उदयपुर, सुन्दर उदयपुर

रजनी डांगी

कार्यालय नगर परिषद

उदयपुर (राज.)

1. **प्रदूषण से मुक्ति का संकल्प**
- विभिन्न कॉलोनियों में नए उद्यान का विकास
- झीलों के इर्द-गिर्द अतिक्रमण को रोकना, पोलिथिन की थैलियों पर प्रतिबन्ध
- नियमित सफाई
- सड़कों की दोनों ओर व डिवाईडरों पर वृक्षारोपण
- ठोस कचरा निस्तारण के लिए शहर से दूर अत्याधुनिक प्रन्धन केन्द्र

2. **सूचना क्रांति की ओर बढ़ते कदम**
- कम्प्यूटरीकृत आदर्श कार्य प्रणाली पर कार्य आरम्भ
- जन्म-मृत्यु पंजीयन का कम्प्यूटरीकरण
- वेबसाईट को अप टू डेट किया जाना
- जन समस्याओं के त्वरित निस्तारण के लिए हेल्प लाईन सेन्टर

3. **अन्य सामाजिक सेवाएं**
- प्रत्येक वार्ड में हेण्डपम्प व महिला स्नानघर
- विभिन्न वार्डों में सामुदायिक भवन व सुलभ शौचालय
- स्कूल व अस्पताल भवनों के विस्तार में सहयोग

4. **मुख्य मेले**
- दशहरा-दीपावली मेला
- हरियाली अमावस्या मेला
- सुखिया सोमवार मेला

5. **जनता से आग्रह**
- नगर परिषद की सम्पत्ति पर अतिक्रमण न करें और न करने दें
- निर्माण कार्य स्वीकृति अनुसार ही करें
- पालतू पशुओं को घर में ही रखे
- कचरा सड़क व नालियों में ना डाले कन्टेनर में डाले
- जन्म-मृत्यु पंजीयन 21 दिवस में कराए
- पालिका की समस्त देय का भुगतान समय पर करें

6. **नागरिकों को बेहतर सेवा परिषद का ध्येय है**
- नागरिकों की सद्भावना व सहयोग ही परिषद की शक्ति है।

महेन्द्र सिंह शेखावत
उपसभापति

रजनी डांगी
सभापति

एवं समस्त पार्षदगण

IS : 1786
ISO : 9001-2000
SKRM
कृष्णा
TMT सरिया
विश्वास फौलाद सा !
A Trusted Name in Steel Since 1966
KRISHNA TMT
KRISHNA TMT BAR
विश्वास फौलाद सा !
Shree Krishna Rolling Mills (Jaipur) Ltd.
37, Ind. Area, Jhotwara, Jaipur - 302012
Ph. : (O) 2341051-53, 2341996, 2340305
Fax : 0141-2341052 E-mail : skrml@dil.in
Mfrs. of : TMT Bars, Rounds, Transmission Line Tower Angles, Joists, Channels, Sections and Special Profiles etc.

The Vidya Bharti Experience-it's the best your Child Can get !
• CBSE & RBSE Boards • Hostel Facilities for Boys and Girls • English & Hindi Medium
Nur. to Sr. Sec. (10+2) with Science, Com. Arts
For Coaching of
IIT-JEE/ AIEEE/ AIPMT/ RPMT
XI & XII FOUNDATION
own Institute
Pro-Line
Vidya Bharti Public School ,Sikar
Helpline School : 01572-270675, 274015/ 9928472907, 9887904779, 9413647501
Coaching : 01572 - 240675 / 9799170906, 9413154800
website: www.vpsindia.com • email: bschirana@gmail.com

आर.एन.आई. नं. 32464/78

मध्यप्रदेश
एक शांत क्रांति की ओर

गांवों और शहरों के विकास के लिए सत्ता की बागडोर दो लाख से ज्यादा महिलाओं के हाथ में होगी

संविधान निर्माताओं के सपनों को पूरा करने की दिशा में एक बड़ा काम

- ✓ 180000 महिला पंच
- ✓ 11520 महिला सरपंच
- ✓ 3400 महिला जनपद सदस्य
- ✓ 415 महिला जिला पंचायत सदस्य
- ✓ 156 जनपदों और 25 जिला पंचायतों में महिला अध्यक्ष
- ✓ 1780 महिला पार्षद
- ✓ 95 नगर पंचायत महिला अध्यक्ष
- ✓ 32 नगर पालिका महिला अध्यक्ष
- ✓ 8 नगर निगमों में महिला महापौर

आधी दुनिया के साथ

पूरा मध्यप्रदेश

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी